अध्याय : 1

राजस्थान की ऐतिहासिक एवं भौगोलिक पृष्ठभूमि

राजस्थान की ऐतिहासिक एवं भौगोलिक पृष्ठभूमि

राजस्थान के विभिन्न भागों के लिये अलग–अलग नाम प्राचीन काल से ही पाये जाते हैं। 'राजस्थान' नाम प्राचीनकाल की देन नहीं है, बल्कि स्थान विशेष, भौगोलिक परिस्थिति के आधार पर अलग–अलग कालों में इसका नाम बदलता रहा। वर्तमान बीकानेर और जोधपुर के जिले महाभारत काल में 'जांगलदेश' कहलाते थे। काफी समय तक यह 'कुरु जांगलाः' या 'माद्रेय जांगलाः' के नाम से विख्यात रहा और उस समय इसकी राजधानी अहिच्छपुर (नागौर) थी। जांगल प्रदेश के आस–पास के भाग को 'सपादलक्ष' कहते थे। इसकी राजधानी शाकम्भरी (साँभर) थी। प्राचीनकाल में उत्तर भारत में कुरु, मत्स्य और शूरसेन बहुत विस्तृत राज्य थे। अलवर राज्य का उत्तरी भाग कुरु देश, दक्षिणी और पश्चिमी मत्स्य देश तथा पूर्वी भाग शूरसेन देश के अन्तर्गत आता था। भरतपुर और धौलपुर राज्य तथा करौली का अधिकांश भाग शूरसेन देश के अन्तर्गत था। शूरसेन की राजधानी मथुरा, मत्स्य की विराट (वैराट), और कुरू की इन्द्रप्रस्थ थी। उदयपुर राज्य का प्राचीन नाम 'किव' था जिसकी राजधानी मध्यमिका थी। डूंगरपुर, बांसवाड़ा प्रदेश बागड़ कहलाते थे। जैसलमेर राज्य का प्राचीन नाम माँड था वहीं जोधपुर के दक्षिणी भाग को गूर्जरत्रा कहते थे। सिरोही के हिस्से की गणना अर्बुद (आबू) देश से होती थी। मालव देश के अन्तर्गत आधुनिक झालावाड़ और टोंक के कुछ प्रान्त आते थे।

मुगलकाल के इतिहासकारों ने 'राजपूत' शब्द प्रयोग में लिया और इसी आधार पर अंग्रेजों ने इसे राजपूताना अर्थात् राजपूतों का देश कहा। राजपूताने के प्रथम और प्रसिद्ध इतिहास लेखक कर्नल जेम्स टॉड पुरानी बहियों के आधार पर इसका नाम 'राजवाड़ा' या 'रायथन' शब्द का प्रयोग करते थे।

राजस्थान के विस्तार का इतिहास पाषाणकाल से मिलता है। पाषाण–युगीन संस्कृति का प्रसार राजस्थान की अनेक प्रमुख तथा सहायक नदियों के किनारे, जैसे – जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, अजमेर, अलवर, भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़, जयपुर, झालावाड़, जालौर, पाली, टोंक आदि जिलों में हो चुका था। बनास, बेड़च, बाथन तथा चम्बल नदियों की घाटियों तथा इनके समीपवर्ती तटीय स्थानों के परिवेक्षण से प्रमाणित हो चुका है कि दक्षिण–पूर्वी तथा उत्तर–पूर्वी तथा दक्षिण–पूर्वी राजस्थान की नदियों के किनारे प्रस्तरयुगीन मानव रहता था और पत्थरों के हथियारों का प्रयोग करता था। मेवाड़ अरावली पर्वत की दक्षिणी पूर्वी ढाल पर स्थित है।

राजस्थान में आर्य जाति का प्रवेश और आर्य सभ्यता का उदय व प्रसार अत्यन्त प्राचीन है। विद्वानों की मान्यता है कि सिन्धु, रावी, सतलज और गंगा–यमुना के दोआब के क्षेत्रों में चल रहे आर्य–अनार्य और आर्य–आर्य संघर्षों के दौरान ही आर्यों की कुछ शाखाएं सुरक्षित और उपजाऊ मैदानों की खोज में सरस्वती और दृषद्वती नदियों की सुरम्य उपत्यकाओं में प्रविष्ट हुईं। इस सुरम्य प्रदेश की उर्वरता, जलप्रवाह और चरागाहों की सुविधा से प्रभावित होकर इन आर्य शाखाओं ने यहां पहले से आबाद स्थानों के निकट अपनी बस्तियां बसा लीं। यहां यह उल्लेखनीय है कि राजस्थान में आर्यों का आगमन अन्य क्षेत्रों से विशिष्ट और अपेक्षाकृत शान्तिपूर्ण था। वस्तुतः राजस्थान में आर्य सभ्यता का प्रसार आर्य–अनार्य संघर्ष के मूल्य पर नहीं, वरन् परस्पर शान्तिपूर्ण सहवास और सहअस्तित्व पर अवलम्बित था। अनूपगढ़, तार खानवाला और चक–64 में दो संस्कृतियों के पास–पास मिलने वाले अवशेष इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि राजस्थान में आर्य और अनार्य संस्कृतियां कुछ समय तक साथ–साथ विकसित होती रहीं। कहा जाता है कि सरस्वती और दृषद्वती नदियों की उपत्यकाएं प्रारम्भिक आर्य संस्कृति का प्रमुख केन्द्र थीं। यहां के प्राकृतिक सौन्दर्य से मोहित होकर आर्यों ने इस प्रदेश को पुनीत ब्रह्मावर्त में सम्मिलित कर लिया था। डॉ. दशरथ शर्मा का मत है कि इन्द्र और सोम के मन्त्रों की रचना तथा ऋग्वेद में वर्णित आध्यात्मिक और

आधिभौतिक गूढ़ विषयों का चिन्तन एवं यज्ञों की महत्ता का प्रतिपादन इसी क्षेत्र में हुआ था। शतपथ ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि ऋग्वेद में जिन आर्य समूहों का उल्लेख हुआ है उनमें से भरत और मत्स्य शाखा के आर्य उत्तर–पश्चिमी राजस्थान में ही रहते थे और यहीं सरस्वती नदी के तट पर महापराक्रमी मत्स्यराज द्वैतवन ने चौदह अश्वमेध यज्ञ किये थे। अनुश्रुतियों के अनुसार मद्र और कुरु शाखा के आर्य उत्तरी और उत्तरी–पूर्वी राजस्थान में बसते थे, तो आर्यों की साल्व शाखा उत्तरी–पूर्वी और दक्षिणी–पश्चिमी राजस्थान तक फैली थी। पौराणिक कथाओं से ज्ञात होता है कि आर्य शासक मधु और कैटभ अपने पराक्रम के लिये प्रसिद्ध थे। मधु के पुत्र धुन्धु ने मरुस्थल में धुन्धुमार (ढूंढाड़) और कुवलयाश्व के वंशज निकुंभ ने भी राजस्थान में आर्य बस्तियां बसाई थीं। । बौद्ध साहित्य में जिन 16 महाजनपदों का उल्लेख हुआ है, उनमें से मत्स्य जनपद तो राजस्थान में ही स्थित था और राजस्थान के अनेक भाग कुरु, शूरसेन और अवन्ति महाजनपदों के अन्तर्गत थे। इसके अतिरिक्त चित्तौड़ के आस–पास का क्षेत्र शिवि जनपद कहलाता था। 327 ई. पू. में सिकन्दर के आक्रमणों से अपनी सुरक्षा और अस्तित्व की रक्षा के लिये पश्चिमोत्तर सीमा से जो कबीले भारत की और बढ़े, उनमें से मालवों, यौधेयों और आर्जुनायनों ने राजस्थान को अपना क्रीड़ास्थल' बनाया। मत्स्य जनपद आधुनिक जयपुर–अलवर–भरतपुर जिलों के मध्यवर्ती क्षेत्र में फैला हुआ था।

इस प्रकार राजस्थान का प्रारम्भिक इतिहास क्रमबद्ध उपलब्ध नहीं होता। यहाँ का प्राचीनतम ऐतिहासिक नगर मध्यमिका खण्डहर के रूप में चित्तौड़ के उत्तर में 8 मील की दूरी पर स्थित है, जो वर्तमान में नगरी के नाम से जाना जाता है। इसका उल्लेख शुंग काल में पतंजलि द्वारा रचित महाभाष्य[1] में यवनों द्वारा विजित प्रदेश के रूप में हुआ है। यहाँ मौयकालीन अभिलेख भी प्राप्त हुआ है। स्थानीय परम्परा के अनुसार चित्तौड़ (चित्रकूट) दुर्ग का निर्माण मौर्य शासक चित्रक के द्वारा करवाया गया था। मौर्य शासक चित्रक का वंशज राजा मान मोर गुहिलवंशी रावल महेन्द्र (बापा रावल) से परास्त हुआ। चित्तौड़ दुर्ग पर गुहिलों का

अधिकार हो गया था।[2] भारत के स्वतंत्र होने तक यह दुर्ग गुहिलवंशी शासकों के अधीन ही रहा, यद्यपि इस अवधि में कभी–कभी इस दुर्ग पर मुसलमान शासकों का भी अधिकार रहा था।

गुहिलों के प्रारम्भिक इतिहास के सम्बन्ध में विद्वान् एकमत नहीं हैं। टॉड व श्यामलदास के अनुसार गुहिलों का मूल स्थान वल्लभी था।[3] वल्लभी के राज–परिवार का एक व्यक्ति गुहिल अथवा गुहदत्त आनन्दपुर से मेवाड़ पहुँचा था। उसके 200 से अधिक सिक्के मिले हैं। इन सिक्कों पर 'श्री गुहिल' तथा 'गुहिल श्री' लेख अंकित हैं।[4] कनिंघम और श्यामलदास ने इन सिक्कों के आधार पर गुहिल का काल छठी सदी का उत्तरार्द्ध निश्चित किया है।

इस वंश में गुहिल के बाद प्रतापी शासक बापा रावल हुआ। ऐसी धारणा है कि बापा किसी व्यक्ति का नाम नहीं, बल्कि उपाधि थी। यह किस शासक की उपाधि थी, इस पर विद्वानों के विभिन्न मत हैं। टॉड का मानना है कि गुहिल के चौथे वंशज शील ने बापा की उपाधि धारण की थी। श्यामलदास टॉड के मत से सहमत नहीं हैं। इनके अनुसार यह उपाधि अपराजित के पुत्र महेन्द्र ने धारण की थी।[5] ओझाजी ने महेन्द्र (द्वितीय) के पुत्र काल भोज के द्वारा बापा रावल की उपाधि लेना स्वीकार किया है।

एकलिंग महात्म्य में बापा रावल के सम्बन्ध में अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण प्राप्त हुआ है। ऐतिहासिक दृष्टि से उसमें एक तथ्य उजागर हुआ है कि बापा रावल ने हारित ऋषि की कृपा से वि सं. 791 (सन् 734 ई.) में मान मोरी से चित्तौड़ दुर्ग हस्तगत किया था। एकलिंग महात्म्य के बीसवें अध्याय के इक्कीसवें श्लोक में बताया गया है कि वि.सं. 810 में बापा रावल राज्य का भार अपने पुत्र को सुपुर्द कर स्वयं मुनि के पास नागदा चला गया।[6] उसकी मृत्यु भी वहीं हुई थी। वर्तमान एकलिंगपुरी के पास आज भी बापा रावल का समाधि–स्थल विद्यमान है। रावल समरसिंह के पूर्व शासकों के कतिपय अभिलेख प्राप्त हुए हैं, परन्तु उनके विस्तृत इतिहास का अभाव रहा है। समरसिंह के काल से पुनः मेवाड़ के शासकों की श्रृंखला आरम्भ हो जाती है। समरसिंह के काल की घटनाओं का पृथ्वीराज राजो

में उल्लेख किया हुआ है, परन्तु पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता संदिग्ध है। परवर्ती लेखकों, ख्यात–वातकारों एवं वंशावली वाचकों ने उक्त रासो की घटनाओं को प्रमाणिक मानकर अपनी कृतियों में उन्हें समाविष्ट कर लिया है, अतः समरसिंह का इतिहास भी प्रमाणयुक्त नहीं कहा जा सकता। उसके काल की कुछ प्रशस्तियाँ प्राप्त हैं, जिनके आधार पर उसके इतिहास की कुछ जानकारी मिलती है। समरसिंह के काल के अभिलेखों के अध्ययन से अनुमान लगता है कि समरसिंह का शासनकाल संवत् 1332 व 1344 के मध्य रहा, अर्थात् यह पृथ्वीराज चौहान के समकालीन नहीं था। समरसिंह के पूर्ववर्ती शासकों में से अल्लट का संवत् 1010, शक्तिकुमार का संवत् 1034, जैत्रसिंह का संवत् 1270 का तथा तेजसिंह का संवत् 1324 का अभिलेख प्राप्त हुआ है।[7]

समरसिंह की मृत्यु के बाद 1302 ई. में उसका लड़का रत्नसिंह चित्तौड़ का शासक बना। मुस्लिम तवारीखों के अनुसार अलाउद्दीन खिलजी ने हिजरी 703 मुहर्रम (सं. 1370 अथवा सन् 1303 ई.) को चित्तौड़ पर आक्रमण किया। उसके साथ प्रसिद्ध इतिहासकार व कवि अमीर खुसरो भी था। वह लिखता है कि सुल्तान ने चित्तौड़ किले का घेरा डाला जिसमें तलहटी की बस्ती भी सम्मिलित थी। घेरा लम्बे समय तक चलता रहा। सुल्तान की सेना ने मजनिकों से किले की चट्टानों को तोड़ने का असफल प्रयास किया। अंततः किले में उपस्थित राजपूतों ने जब देखा कि दुर्ग को किसी कीमत पर नहीं बचाया जा सकता है तो उन्होंने दुश्मनों के हाथ न पड़ने देने के उद्देश्य से जौहर प्रणाली से राजपूत महिलाओं और बच्चों को धधकती हुई अग्नि में प्रवेश करा दिया और वे सब केसरिया वस्त्र धारण कर, दुर्ग के द्वार खोज, शत्रु के सम्मुख आ खड़े हुए। घमासान युद्ध के बाद 25 अगस्त, 1303 ईस्वी को किले पर सुल्तान का अधिकार हो गया। रत्नसिंह अपने सभी योद्धाओं के साथ मारा गया। गोरा–बादल भी युद्ध में काम आए। जब अलाउद्दीन ध्वंस प्रायः दुर्ग में पहुँचा उस समय तक पद्मिनी किले में उपस्थित स्त्रियों के साथ भस्म हो चुकी थी। पद्मिनी की कथा को ऐतिहासिक तथ्य मानने के लिए इतिहासकार एकमत नहीं हैं। मल्लिक मोहम्मद जायसी कृत 'पद्मावत' में

पद्मिनी सम्बन्धित विवरण कपोल कल्पित सा जान पड़ता है। इसमें ऐतिहासिक सत्यता कम और कल्पना का पुट अधिक है। इसकी ऐतिहासिकता पर प्रश्न–चिन्ह लगा हुआ है।

चित्तौड़ दुर्ग को फतह कर लेने के बाद अलाउद्दीन ने औपचारिक रूप से किला खिज्रखाँ को सुपुर्द किया और चित्तौड़ का नाम खिज़राबाद रखा गया। अलाउद्दीन का उत्तराधिकारी इस किले को अधिक समय तक अपने अधीन नहीं रख सका। सुल्तान ने किले की व्यवस्था के लिए मालदेव सोनगरा को नियुक्त कर दिया। उसे भी स्थानीय लोगों के विरोध का सामना करना पड़ा था।

चित्तौड़ के प्रथम साके के अवसर पर रत्नसिंह ने अपने कतिपय निकट के सम्बन्धियों को पहाड़ियों में चले जाने के आदेश दे दिये थे, ताकि निकट भविष्य में अपनी शक्ति का संचय कर वे पुनः चित्तौड़ पर अपना अधिकार स्थापित कर सकें। इनमें दो भाई राहप और माहप थे। माहप तो निरूत्साही होकर डूंगरपुर चला गया। राहप चित्तौड़ प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहा। राहप ने मण्डोर के प्रतिहार शासक मोकल को युद्ध में परास्त कर उसे कैद कर लिया व उसका विरुद् छीन कर स्वयं महाराणा कहलाया। राणा राहप सिसोदा नामक ग्राम में रहा था, अतः इसके वंशज सिसोदिया कहलाए। राहप जीवन पर्यन्त चित्तौड़ लेने के लिए संघर्ष करता रहा, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली।[8] राहप के निधन के पश्चात् भुवनसिंह चित्तौड़ प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहा। वह एक बार तो उस पर अधिकार करने में सफल भी हुआ, इसकी पुष्टि रंणकपुर जैन मंदिर अभिलेख से भी होती है। चित्तौड़ पर राणा का अधिकार बहुत कम समय तक रहा। मौहम्मद तुगलक के समय इस पर पुनः मुसलमानों का अधिकार हो गया। मालदेव सोनगरा इसका शासक नियुक्त था। भुवनसिंह के बाद राणा हम्मीरसिंह चित्तौड़ की रक्षा करते हुए तंग आ चुका था। उसने राणा हम्मीर से सुलह कर अपनी पुत्री का विवाह उससे कर दिया तथा चित्तौड़ के कई परगने उसे दहेज में दे दिए। उसके बाद 1326 ई. के लगभग हम्मीर ने छल से चित्तौड़ हस्तगत कर लिया।[9] इसके पश्चात् हम्मीर ने चित्तौड़ के राज्य में विस्तार भी किया। अब मेवाड़

में सिसोदिया राणाओं के राज्य की स्थापना हुई जो भारत स्वतंत्र होने तक कायम रहा।

हम्मीर की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र क्षेत्रसिंह (खेता) (1364–1382 ई.) मेवाड़ का शासक बना। उसने अपने बाहुबल से अजमेर, जहाजपुर, मांडल और छप्पन प्रदेश पर विजय पताका फहराई। उसने मालवा के दिलावर खाँ गौरी को परास्त कर मेवाड़ मालवा संघर्ष का सूत्रपात किया। हाड़ौली के हाड़ा शासकों को दबाने का श्रेय भी खेता को जाता है।[10]

खेता के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र लक्षसिंह (लाखा) (1382–1421 ई.) गद्दी पर आसीन हुआ। उसने अपने पैतृक राज्य की सीमा का विस्तार किया था। उसने बदनौर प्रदेश को अपने अधीन कर लिया। लाखा ने डोडिया राजपूतों को अपने यहाँ आश्रय देकर राजपूत शक्ति को संगठित किया तथा धवल नामी डोडिया को रतनगढ़, नन्दराय और मसूदा आदि क्षेत्र जागीर में देकर उसे अपना उमराव बनाया। तुर्कों के साथ भी छुटपुट झगड़ों का उल्लेख मिलता है। भाग्यवश उसके काल में जावर की चाँदी की खान का पता चला। इसकी आय से राणा ने अनेक सुरक्षात्मक दुर्गों का निर्माण करवाया था। उसी के काल में उदयपुर में पिछोला झील का निर्माण हुआ था। लाखा का काल साहित्यिक उत्थान का काल माना जाता है। झोटिंग भट्ट और धनेश्वर भट्ट जैसे विद्वान् लेखक उसके काल की शोभा बढ़ा रहे थे।[11]

राणा लाखा के शासन काल के आखिरी वर्षों में एक ऐतिहासिक घटना हुई।[12] ऐसा कहा जाता है कि जब महाराणा लाखा अपने दरबारियों के साथ बैठा हुआ था तब राठौड़ रणमल की बहन हंसाबाई का नारियल मारवाड़ के ज्येष्ठ पुत्र चूंडा के लिए आया था। राणा लाखा ने हँसी से कह दिया कि नारियल वृद्धों के लिए कौन लाये? रणमल को इसकी सूचना मिली तो उसने कहलाया कि यदि हंसाबाई से उत्पन्न पुत्र को मेवाड़ की राजगद्दी प्राप्त हो तो विवाह राणा से कर दिया जायेगा। हंसाबाई के विवाह से राणा के पुत्र हुआ जिसका नाम मोकल रखा गया। चूंडा को उसका संरक्षक नियुक्त किया गया। तब से यह नियम बना कि

भविष्य में मेवाड़ के महाराणाओं के सभी पट्टों, परवानों और सनदों पर चूंडा और उसके वंशजों के भालों का निशान अंकित होता रहेगा। तत्काल तो सभी कार्य शांति से सम्पन्न हो गए परन्तु आने वाले समय में इस घटना ने मेवाड़ के इतिहास को अत्यधिक प्रभावित किया था।

राणा लाखा की मृत्यु के उपरान्त मोकल (1421–1433 ई.) मेवाड़ की गद्दी पर आसीन हुआ। लाखा के ज्येष्ठ पुत्र चूंडा ने राठौड़ों के साथ किए गए समझौते के अनुसार राज्याधिकार का परित्याग करते हुए मोकल की सेवा में रहना स्वीकार किया। सिंहासनारूढ़ होने के समय मोकल की आयु 12 वर्ष थी। राज्य का सभी कार्य चूंडा बड़ी कुशलता से चलाता था। कुछ समय बाद हंसाबाई के मन में सन्देह होने लगा कि कहीं चूंडा अवसर पाकर राज्य पर अपना स्वतंत्र अधिकार स्थापित नहीं कर ले। हंसाबाई की इस मनोवृत्ति से व्यथित होकर स्वाभिमानी चूंडा मेवाड़ छोड़ मांडू के दरबार में पहुँच गया, जहाँ उसे सम्मानपूर्वक रखा गया। राजमाता ने राज्य प्रबन्ध की देखभाल करने के लिए अपने भाई रणमल को चित्तौड़ बुलवा लिया। उसने मेवाड़ के प्रशासन में अत्यधिक योगदान दिया। उसने कई राठौड़ों को मारवाड़ से बुलवा कर राज्य के उच्च पदों पर नियुक्त कर दिया। इससे मेवाड़ी सामन्तों के मन में सन्देह होने लगा कि कहीं मेवाड़ पर राठौड़ों की सत्ता की स्थापना न हो जाये।[13]

भाग्यवश मारवाड़ का शासक चूंडा मर गया। उसके उत्तराधिकारियों के बीच संघर्ष रहा। अंततः रणमल को मण्डोर का स्वामित्व प्राप्त हो गया। इस प्रकार मेवाड़, मारवाड़ के राठौड़ों के प्रभाव से स्वतः ही मुक्त हो गया। मोकल ने बड़ी चुस्ती से अपनी शक्ति का संगठन किया तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। मोकल कला व विद्याप्रेमी शासक था। उसके शासनकाल में नए मंदिरों का निर्माण हुआ तथा उसने प्राचीन मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया। सोने और चाँदी के तुलादान देकर अपनी धार्मिक प्रवृत्ति व निष्ठा का परिचय दिया। उसके दरबार में अनेक शिल्पी व विद्वान् आश्रय पाते थे जिनमें मना, फना, विसल जैसे शिल्पियों तथा योगेश्वर और भट्टविष्णु जैसे विद्वानों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।[14]

कुछ समय बाद मोकल की कार्यशैली व उसके बढ़ते हुए प्रताप से भयभीत होकर उसके वैमातृज भाई, चाचा और मेरा ने महपा पंवार आदि मेवाड़ी सरदारों की सहायता से मोकल के विरूद्ध षड्यंत्र रचना आरम्भ किया। अवसर पाकर चाचा और मेरा ने महाराणा मोकल का वध कर दिया।[15]

मोकल की हत्या हो जाने के बाद उसका अल्पवयस्क लड़का कुंभा 1433 ई. में मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। मेवाड़ की राजनीतिक स्थिति बड़ी दयनीय थी। राणा कुंभा चारों ओर से शत्रुओं से घिरा हुआ था। ऐसी स्थिति में एक बार पुनः मारवाड़ के शासक रणमल को उसने अपनी सहायतार्थ आमंत्रित किया। रणमल तुरन्त अपनी सेना सहित मेवाड़ पहुँचा। रणमल ने मोकल के हत्यारे चाचा व मेरा को मारकर प्रतिशोध लिया एवं मेवाड़ में पुनः शांति स्थापित की।[16]

रणमल ने अपने पैतृक राज्य मारवाड़ से भी अधिक ध्यान मेवाड़ राज्य को सुदृढ़ बनाने में लगाया। उसने मेवाड़ के उच्च पदों पर अपने विश्वासी राठौड़ सरदारों को नियुक्त किया एवं मेवाड़ी सेना का पुनर्गठन किया। इसके उपरान्त मोकल के हत्यारे के अनन्य सहयोगी महपा पंवार को, जिसने माण्डू के सुल्तान महमूद खिलजी के राज्य में शरण ले ली थी, लौटाने के लिए सुल्तान से कुंभा ने मांग की। माण्डू के सुल्तान ने अपने शरणागत को लौटाने से इंकार कर दिया। इस पर राणा कुंभा ने सुल्तान के विरूद्ध सेना भेज दी। 1437 ई. में सारंगपुर के पास युद्ध हुआ जिसमें महमूद को परास्त होकर भागना पड़ा। मेवाड़ी सेना ने भागती सेना का मांडू तक पीछा किया। महमूद महाराणा द्वारा कैद कर लिया गया। छः महीनों तक चित्तौड़ में उसे कैदी के रूप में रखा गया, फिर दण्ड के रूप में धनराशि वसूल कर उसे मुक्त किया गया। इस विजय के उपलक्ष्य में महाराणा कुंभा ने चित्तौड़ दुर्ग में विजय स्तम्भ का निर्माण करवाया था। राव रणमल के सहयोग से मेवाड़ राज्य की दिनों–दिन प्रगति होती गई। कुंभा को अनेक युद्धों में विजयश्री प्राप्त हुई व मेवाड़ राज्य की सीमा का विस्तार हुआ। महाराणा कुंभा की स्थिति सुदृढ़ बन गई। सन् 1439 ई. के रणकपुर जैन मंदिर के अभिलेख में कुंभा की विजयों का उल्लेख हुआ है।[17] प्रशस्तिकार लिखता है कि

महाराणा कुंभा ने सारंगपुर, नागौर, गागरोन, नारायणा, अजयमेरू, मण्डोर, मण्डलकर, बून्दी, खाटू, चाटसू आदि के सुदृढ़ और विषम किलों पर विजय प्राप्त की। हो सकता है कि इनमें से कुछ पर मात्र राजनीतिक प्रभाव ही स्थापित हुआ हो।

मेवाड़ में रणमल के प्रभाव को बढ़ते देख मेवाड़ी सामन्त उससे भयभीत होने लगे थे। उसने चूंडा के भाई राघवदेव को, जो स्थानीय सामन्तों का नेता था, षड्यंत्र से मरवा दिया था। महाराणा कुंभा भी रणमल की बढ़ती शक्ति को मेवाड़ राज्य के लिए खतरा समझने लगा था। उसने बड़ी चतुराई से रणमल विरोधी एक्का और महपा को क्षमा प्रदान कर मेवाड़ में अपनी सेवा में बुला लिया। चूंडा भी राणा की अनुमति से मेवाड़ लौट आया था। महाराणा के मूक निर्देशन से रणमल विरोधी गुट तैयार हो गया। उन्हीं दिनों में मेवाड़ी सामन्तों ने रणमल की प्रेयसी भारमली को भी रणमल विरोधी गुट में सम्मिलित कर लिया और उसी के माध्यम से षड्यंत्र कर 1438 ई. में राव रणमल की हत्या कर दी गई।[18] इस प्रकार राणा कुंभा ने कूटनीति से राठौड़ों का मेवाड़ में प्रभाव समाप्त कर दिया। राठौड़ों की राजधानी मण्डोर पर भी मेवाड़ी सेना का अधिकार हो गया। राणा ने मारवाड़ का प्रशासन अपने पुत्रों – कुन्तल, मान्जा, सूवा तथा झाला विक्रमादित्य एवं हिंगलू अहाडा के सुपुर्द कर दिया। 1453 ई. में राव जोधा ने मण्डोर पर पुनः अधिकार किया था। मेवाड़ी सेना को परास्त होकर मारवाड़ के क्षेत्र से भागने के लिए बाध्य होना पड़ा था। राठौड़ी सेना ने मेवाड़ी क्षेत्र को लूटा। गोड़वाड़ प्रदेश को मारवाड़ में मिला लिया। अन्त में मेवाड़–मारवाड़ संधि हो गई। जोधा की पुत्री श्रृंगारदेवी का विवाह महाराणा कुंभा के पुत्र रायमल के साथ सम्पन्न हुआ। इससे राठौड़ों का उपद्रव शान्त हो गया व महाराणा अपनी पूर्ण शक्ति मुसलमान शासकों के दमन में लगाने में समर्थ हुआ।[19]

महाराणा कुंभा का शासनकाल राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के साथ–साथ साहित्य एवं कला के क्षेत्र में प्रशंसनीय योगदान रहा। मेवाड़ के कुल 44 दुर्गों में से 32 दुर्गों का निर्माण महाराणा कुंभा के काल में किया गया था।

इनमें अचलगढ़ व कुंभलगढ़ के दुर्गों का विशेष महत्व है। उसने सुप्रसिद्ध कीर्ति स्तम्भ के अतिरिक्त चित्तौड़ दुर्ग में महल, शस्त्रागार, कोष्ठागार आदि अनेक भव्य इमारतों का निर्माण करवाया था। महाराणा स्वयं विद्वान् था व विद्वानों का आश्रयदाता था। एकलिंग माहात्म्य से ज्ञात होता है कि वह वेद, स्मृति, मीमांसा, उपनिषद्, व्याकरण, राजनीतिशास्त्र का ज्ञाता था। संगीतराज, संगीतमीमांसा एवं सूंडप्रबंध उसके द्वारा लिखित रचनाएँ थीं। कुंभा ने चण्डीशतक की व्याख्या, गीतगोविन्द की रसिकप्रिया टीका और संगीत रत्नाकर की टीका लिखी थी। वह अनेक भाषाओं का जानकार था। उसके राज्य में प्रसिद्ध शिल्पकार मण्डन रहता था। कवि अत्रि और महेश को उसका आश्रय प्राप्त था। उसके काल में जैन साहित्य का भी उत्थान हुआ था। संक्षेप में कहा जा सकता है कि कुंभा का काल महती क्रियाशीलता का युग था।[20]

महाराणा कुंभा के अंतिम दिन सुखद नहीं रहे। सन् 1468 ई. में महाराणा उन्माद रोग से ग्रसित हो गया। वह अपना अधिक समय भामादेव के पास जलाशय के पास व्यतीत करता था। अवसर पाकर एक दिन उसके ज्येष्ठ पुत्र ऊदा ने कुम्भलमेर के दुर्ग में महाराणा की हत्या कर दी।

पिता की हत्या कर ऊदा (1468–1473 ई.) मेवाड़ की गद्दी पर आसीन हुआ। उसके द्वारा पितृ हत्या के कुकृत्य से मेवाड़ी सरदार उससे नाराज हो गये और उन्होंने उसके भाई रायमल का पक्ष लिया। जावर और पानगढ़ पर अधिकार करता हुआ रायमल चित्तौड़ पहुँचा। निःसहाय स्थिति में ऊदा चित्तौड़ छोड़ कुंभलगढ़ की ओर पलायन कर गया। वहाँ भी वह चैन से नहीं रह सका। वह अपने पुत्रों सहित मांडू पहुँचा। उसे आशा थी कि मांडू का सुल्तान गयासुद्दीन उसकी मदद करेगा। मदद के लिए बातचीत चल रही थी, इसी बीच अकस्मात् बिजली के गिरने से पितृघाती ऊदा का निधन हो गया।[21]

रायमल का राज्यकाल 1473 से 1509 ई. तक रहा। ऊदा व उसके लड़कों द्वारा उत्तेजित किए जाने पर मांडू के सुल्तान ने मेवाड़ पर दो बार आक्रमण किया था, परन्तु उसे हार कर लौटना पड़ा। 1503 ई. में गयासुद्दीन के लड़के नासिरशाह

ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की। इस बार राणा ने उसे धन देकर लौटा दिया। इस युद्ध में रायमल को अपने पुत्रों के आपसी वैमनस्य के कारण नीचा देखना पड़ा था।

महाराणा की वृद्धावस्था में उसके तीन पुत्र पृथ्वीराज, जयमल और संग्रामसिंह में उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर गृहकलह की स्थिति बन गई। कुछ समय बाद पृथ्वीराज और जयमल की अलग–अलग लड़ाइयों में मृत्यु हो गई। संग्रामसिंह के लिए मेवाड़ की गद्दी प्राप्त करना सुलभ हो गया। महाराणा के पुत्रों के कलह के अतिरिक्त निकट के सम्बन्धी सारंगदेव और सूरजमल के बीच भी वैमनस्य चल रहा था। मेवाड़ी सामन्त दलगत राजनीति में व्यस्त थे जिससे मेवाड़ की शक्ति क्षीण होने लगी। इस विषम परिस्थिति के कारण महाराणा त्रस्त था। वह अस्वस्थ हो गया और 1509 ई. में उसकी मृत्यु हो गई।[22]

रायमल की मृत्यु के पश्चात् संग्रामसिंह (सांगा) मेवाड़ का शासक बना। उसका शासनकाल 1509 से 1528 ई. तक रहा। राणा सांगा के राज्याभिषेक के समय मेवाड़ चारों ओर से शत्रुओं से घिरा हुआ था। दिल्ली के लोदी सुल्तान सिकन्दर, गुजरात में महमूद शाह बेगड़ा और मालवा ने नसिरूद्दीन का शासन था। इनके आक्रमणों से बचने के लिए सांगा ने अपनी सीमा को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया। उसने मेवाड़ की उत्तरी–पूर्वी सीमा पर अपने हितैषी कर्मचन्द पंवार को एक शक्तिशाली सामन्त के रूप में प्रतिष्ठित किया।[23] दक्षिण–पश्चिमी सीमा को सुरक्षित रखने के लिए उसने सिरोही और बागड़ के शासकों को अपना मित्र बनाया तथा ईडर में अपने हितैषी व प्रशंसक रायमल को सिंहासनारूढ़ करवाया। मारवाड़ के शासक के प्रति उसने मित्रता और सहयोग का अनुसरण किया। इस प्रकार सांगा ने अपने राज्य की सीमा को सुदृढ़ बना लिया।[24]

गुजरात मेवाड़ संघर्ष का सूत्रपात महाराणा कुंभा के काल से आरम्भ हुआ था जो राणा सांगा के काल में भी चलता रहा। गुजरात के सम्बन्ध में सांगा ने महाराणा कुंभा द्वारा अपनायी गयी नीति का ही अनुसरण किया था। ईडर की आन्तरिक स्थिति में हस्तक्षेप करना उसकी नीति का एक अंग था। उसने ईडर के राज सिंहासन पर भारमल के स्थान पर अपने सहयोगी रायमल को बैठाया।

गुजरात का सुल्तान मुज्जफर क्रुद्ध हुआ। उसने रायमल को पदच्युत करने के लिए दो बार असफल आक्रमण किए। तीसरी बार सुल्तान ने जहीरूल्मुल्क के नेतृत्व में ईडर के विरूद्ध एक सेना भेजी जिसने ईडर पर अधिकार कर लिया। इस पर महाराणा सांगा ने स्वयं एक सेना के साथ ईडर की ओर प्रस्थान किया। उसने रायमल को ईडर की गद्दी पर बैठाया और अहमदनगर का घेरा डाला। मुस्लिम सेना परास्त हुई। राणा सांगा को लूट से अतुल सामग्री हाथ लगी। राणा सांगा की इस विजय से गुजरात का सुल्तान लज्जित व भयभीत हुआ। एक बार पुनः उसने सौरठ के हाकिम मलिक अयाज के साथ मिलकर राणा सांगा के विरूद्ध सैनिक कार्यवाही की। डूंगरपुर, बांसवाड़ा तथा सागवाड़ा से लूट खसोट करती हुई गुजराती सेना मंदसोर पहुँची, परन्तु मल्लिक अयाज ने पराजय की संभावना से भयभीत होकर राणा से संधि कर ली। इस पर सुल्तान को भी निराश होकर गुजरात लौटना पड़ा। इस प्रकार राणा सांगा की शक्ति व प्रतिष्ठा में वृद्धि होने लगी।[25]

मालवा के सुल्तान महमूद द्वितीय की स्थिति अच्छी नहीं थी। राजपूत सरदार मेदिनीराय का उस पर प्रभाव था जो मुस्लिम अमीरों को पसन्द नहीं था। उन्होंने गुजरात के सुल्तान की सहायता से मेदिनीराय को मांडू छोड़ने के लिए विवश कर दिया। मेदिनीराय ने राणा सांगा की सहायता से मांडू पर आक्रमण करने की योजना बनाई, परन्तु उपयुक्त समय न मानकर इसे स्थगित कर दिया। राणा ने उसे गागरोन, चन्देरी आदि क्षेत्र जागीर में देकर अपना सामन्त बना लिया। सुल्तान महमूद द्वितीय ने मेदिनीराय को दण्ड देने के लिए सैनिक कार्यवाही की। राणा की फौज ने उसे परास्त कर दिया और बन्दी बना लिया। सुल्तान महमूद ने भविष्य में अच्छा व्यवहार करने का वायदा किया। इस पर राणा ने उसे मुक्त कर दिया। महमूद का एक लड़का जामिन की तौर पर कुछ समय तक चित्तौड़ में रहा। महमूद ने महाराणा को बहुमूल्य भेंट दी थी। राणा की इस सुलह की नीति ने शक्ति संतुलन कायम किया। अब मेवाड़ पर गुजरात व मालवा की तरफ से आक्रमण होने की संभावना नहीं रही।[26]

मालवा व गुजरात के सुल्तानों से निपटने के पश्चात् महाराणा सांगा ने उत्तर–पूर्व की ओर अपने राज्य की सीमा का विस्तार करना आरम्भ कर दिया। इससे खिन्न होकर दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी ने एक बड़ी सेना के साथ मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी। खातोली स्थान पर युद्ध हुआ जिसमें महाराणा सांगा की विजय हुई। इब्राहीम भाग गया, उसका लड़का राणा के द्वारा बन्दी बना लिया गया। दण्ड के रूप में बड़ी धनराशि प्राप्त कर सांगा ने उसे मुक्त कर दिया। इस समय मेवाड़ की शक्ति चरम सीमा पर थी। गोपीनाथ के शब्दों में, राणा इन विजयों से राजपूत संगठन का नेता स्वीकार कर लिया गया था और उसके व्यक्तित्व में हिन्दू शौर्य की आभा देदीप्यमान हो चली थी।[27]

बाबर ने 1526 ई. में पानीपत के मैदान में इब्राहीम को परास्त कर दिल्ली व आगरा पर अधिकार स्थापित कर लिया था। अभी वह भारत का स्वामी नहीं कहा जा सकता था। ऐसी स्थिति प्राप्त करने के लिए उसे राणा सांगा से लोहा लेना शेष था। राणा सांगा भी बाबर की भांति महत्वाकांक्षी था। भारतीय नरेश व अफगान शासक उसकी शक्ति का लोहा मानते थे। बाबर ने राणा सांगा पर आरोप लगाया था कि उसने अपने वादे के अनुसार पानीपत के मैदान में इब्राहीम के विरूद्ध उसकी सैन्य शक्ति की सहायता नहीं की थी और न वह दिल्ली व आगरा पर उसकी विजय होने पर उससे मिलने के लिए उपस्थित हुआ। स्थानीय साक्ष्यों के अनुसार बाबर ने राणा सांगा से इब्राहीम के विरूद्ध सहायता चाही थी।[28] कारण जो भी हो, इतना निश्चित है कि दोनों उत्तरी भारत पर अपना निष्कंटक प्रभुत्व स्थापित करने की आकांक्षा रखते थे। बाबर ने सैनिक एकत्र कर राणा सांगा से युद्ध करने के लिए आगरा से प्रस्थान किया और खानवा के मैदान में पहुँच मोर्चाबन्दी की। राणा सांगा भी एक विशाल सेना के साथ बयाना पर विजय प्राप्त करता हुआ टेढ़े–मेढ़े भुसावर के रास्ते से खानवा के निकट पहुँचा। 17 मार्च, 1527 ई. को युद्ध हुआ जिसमें प्रारम्भ में सांगा का पलड़ा भारी रहा, परन्तु बाद में मुगलों का सितारा बुलन्द रहा। बाबर विजयी हुआ, राणा सांगा स्वयं युद्ध में घायल हुआ। मूर्च्छित स्थिति में उसे रण–स्थल से बाहर ले जाया गया।

भारत के इतिहास में खानवा के युद्ध का बड़ा महत्व है। इससे राज–सत्ता राजपूतों के हाथों से निकल कर मुगलों के हाथ में चली गई जो 200 वर्षों से भी अधिक समय तक उनके पास बनी रही। यद्यपि राजपूत परास्त हो गए थे, फिर भी उनकी शक्ति अभी पूर्णतया समाप्त नहीं हुई थी। कुछ ही समय में उनकी शक्ति पुनः अकबर के लिए समस्या बन गई थी। मेवाड़ के शासकों ने अकबर की सत्ता से निरन्तर लोहा लिया।[29]

राणा सांगा के अंतिम दिन संकटग्रस्त रहे। मूर्च्छित अवस्था में उसे बसवा स्थान पर पहुँचाया गया था। होश में आने के बाद वह पुनः युद्ध करने के लिए उत्तेजित था। उसने युद्ध की तैयारी करनी आरम्भ कर दी। उसके सहयोगियों ने देखा कि इस बार पराजित होने पर मेवाड़ का सर्वनाश निश्चित था। उसके सामंतों ने मंत्रणा कर राणा सांगा को विष दे दिया, जिसके फलस्वरूप 30 जनवरी, 1528 ई. को उसकी मृत्यु हो गई।[30]

महाराणा सांगा वीर, उदार, कृतज्ञ, बुद्धिमान और न्याय–परायण शासक था। उसने अपने बाहुबल से अपने साम्राज्य का अत्यधिक विस्तार किया व समस्त राजपूत शक्ति को अपने ध्वज के नीचे एकीकृत किया। अनेक युद्धों के विजेता महाराणा सांगा ने अपनी एक आँख, एक हाथ और एक पैर तक रणवेदी को अर्पित कर दिए थे। उसके शरीर पर घावों के अनेक निशान थे। बाबर लिखता है कि उसका मुल्क 10 करोड़ आय का था। उसकी सेना में एक लाख सवार थे। उसके साथ 7 राजा, 9 राव और 104 छोटे सरदार रहा करते थे।[31] उसके तीन उत्तराधिकारी भी यदि उसके समान ही वीर व योग्य होते तो मुगलों का राज्य भारत में जम नहीं पाता।

महाराणा सांगा की मृत्यु के उपरान्त मेवाड़ पतन की ओर अग्रसर होने लगा था। 10 वर्ष की अवधि में मेवाड़ में तीन शासक हुए – रत्नसिंह (1528–1531 ई.), विक्रमादित्य (1531–1530 ई.) और बणवीर (1536–1537 ई.)। इनके काल में मेवाड़ में षड्यंत्र, हत्याओं और कलह का बोलबाला रहा। मेवाड़ की स्थिति बड़ी दयनीय हो गई थी। रत्नसिंह के शासनकाल में संग्रामसिंह की

हाड़ीरानी कर्मावती (कर्णावती) ने बाबर को संदेश भेज दिया कि यदि वह उसके लड़के विक्रमादित्य को मेवाड़ गद्दी दिलाने में मदद करे तो उसे रणथम्भौर का किला सुपुर्द कर दिया जाएगा। इससे निकृष्ट कार्य और क्या हो सकता है? सौभाग्य से बाबर का निधन हो गया इसलिए कोई कार्यवाही संभव नहीं हो सकी। रत्नसिंह और सूरजमल हाडा के बीच वैमनस्य था। 1531 ई. में शिकार के अवसर पर एक–दूसरे पर वार करने के कारण दोनों की मृत्यु हो गई। विक्रमादित्य के शासन काल में राजमाता कर्मावती के व्यवहार से सामन्त वर्ग असंतुष्ट था। राणा शासन के प्रति निष्क्रिय था। वह पहलवानों और तमाशबीनों के संग अपना समय व्यतीत करता था। गुजरात के शासक बहादुरशाह के दो आक्रमणों के कारण मेवाड़ को बड़ी क्षति उठानी पड़ी थी। कुँवर पृथ्वीराज के अनौरस पुत्र बणवीर ने अवसर पाकर राणा की हत्या कर दी और मेवाड़ की गद्दी पर आसीन हो गया। उसने विक्रमादित्य के दूसरे भाई उदयसिंह की भी हत्या करनी चाही, परंतु मेवाड़ी सामंतों ने पन्ना धाय के सहयोग से उसे बचा लिया। बणवीर को राज्य छोड़कर भागने के लिए बाध्य होना पड़ा। अंततः उदयसिंह (1537–1572 ई.) मेवाड़ का स्वामी बना।[32]

इस प्रकार मुगल राज्य की स्थापना बाबर द्वारा जब की गयी, तब राजस्थान अनेक स्वतंत्र राजपूत राज्यों में बँटा हुआ था। इन राज्यों में मेवाड़, मारवाड़, बीकानेर, जैसलमेर, आमेर एवं बूंदी प्रमुख थे। अपनी पानीपत की विजय के पश्चात् बाबर ने यह अनुभव किया कि भारतीय साम्राज्य का स्वामित्व महाराणा सांगा को परास्त किये बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। लेकिन संयोगवश खनुआ के युद्ध के बाद सांगा की मृत्यु हो गई। वैसे तो बाबर ने महाराणा को परास्त कर दिया था, परन्तु वे मेवाड़ नरेश एवं अन्य राजपूत राजाओं की शक्ति को पूर्णतः कुचल नहीं सका था। उसने राजस्थान में अपने राज्य विस्तार का प्रयत्न भी नहीं किया। वह जानता था कि राजस्थान के विशेषतः मेवाड़ के शासकों में मुगलों के प्रति मैत्री भावना नहीं है और वे सांगा की मृत्यु के पश्चात् शनैःशनैः अपनी शक्ति के संगठन में लगे हुए हैं। यह सच है कि सांगा के उत्तराधिकारियों

में सांगा का शौर्य तथा साहस नहीं था और वे अपने घरेलू झगड़ों में उलझे हुए थे, तथापि मेवाड़ के शत्रुओं में मेवाड़ के नरेशों की शक्ति के लिए श्रद्धा भावना अभी तक बनी हुई थी। इब्राहीम लोदी का पुत्र स्वतः मेवाड़ में सुरक्षा प्राप्त करने की आशा से गया था।

बाबर की मृत्यु के उपरान्त हुमायूं ने भी मनसा मेवाड़ एवं मारवाड़ से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा नहीं की। हो सकता है उसने रानी कर्मावती द्वारा दिये गये आमंत्रण की उपेक्षा अपनी अदूरदर्शिता तथा धार्मिक संकुचितता के कारण की हो, परन्तु ऐसा भी अनुमान किया जा सकता है कि उसने बहादुरशाह के हाथों चित्तौड़ का ध्वंस अपने पिता की राजपूतों के प्रति अपनाई गई नीति के अनुरूप उचित समझा हो। इसी प्रकार मालवेद द्वारा प्रस्तावित राजपूत–मुगल मैत्री को स्वीकार करने में विलम्ब करना हुमायूँ का राजपूतों के प्रति सन्देह का परिणाम हो सकता है।

उदयसिंह प्रारम्भ से ही अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाने के लिए प्रयत्नशील रहा। पाली के सोनगरा अखैराज की पुत्री के साथ उसका विवाह हुआ था। इस वैवाहिक सम्बन्ध से महाराणा की स्थिति मजबूत हुई। मारवाड़ के शासक मालदेव से उसकी अनबन हो गई थी। उसने कुम्भलगढ़ पर आक्रमण किया था, परन्तु उसे विशेष सफलता नहीं मिली। महाराणा उदयसिंह के सहयोग से सूरजन हाड़ा को बूंदी का सिंहासन प्राप्त हुआ था। वह महाराणा पर आश्रित था। सिरोही राज्य पर भी उदयसिंह का प्रभाव था।[33]

शेरशाह ने मारवाड़ पर अधिकार करने के बाद चित्तौड़ को हस्तगत करना चाहा। उदयसिंह ने युक्ति से इस संकट को टाल दिया। उसने किले की कुंजियाँ शेरशाह को सुपुर्द कर दीं। शेरशाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण नहीं किया। उसने अपने राजनीतिक प्रभाव को बनाये रखने के उद्देश्य से अपने दूत खवासखाँ को चित्तौड़ में नियुक्त कर दिया। जैसे ही शेरशाह का निधन हुआ, महाराणा ने उसके अधिकारी को चित्तौड़ से निकाल दिया। उदयसिंह ने अजमेर के अफगान हाकिम हाजीखाँ को परास्त कर अपनी शक्ति को बढ़ाया।[34]

मुगलों द्वारा किए गए बारूद के प्रयोग के कारण युद्ध–प्रणाली में परिवर्तन होने लगा था। अब चित्तौड़ जैसे दुर्गों का सामरिक दृष्टि से महत्व कम हो गया था। दूरदर्शी महाराणा उदयसिंह ने पहाड़ियों की श्रेणियों से आच्छादित मेवाड़ के दक्षिणी पश्चिमी भाग को सुरक्षा की दृष्टि से उपयोगी समझा। उसने उदयपुर नगर बसाया और उसके पास उदयसागर तालाब का निर्माण करवाया जिससे पीने का पानी उपलब्ध हो सके तथा सिंचाई के लिए भी पानी दिया जा सके। गिरवा का क्षेत्र धीरे–धीरे आबाद होने लगा। यह क्षेत्र प्राकृतिक रूप से तोपों व घुड़सवारों की मार से बहुत अंशों तक सुरक्षित था। इस भाग के अर्द्ध स्वतंत्र जूड़ा, ओगना, पानरवा आदि के सामंतों को दबा कर उदयसिंह ने उन्हें अपने अधीन किया। महाराणा द्वारा अपनायी गयी यह सैनिक नीति प्रदेश के लिए उपयोगी प्रमाणित हुई। महाराणा प्रताप ने भी इसी नीति का अनुसरण किया था।[35]

महाराणा उदयसिंह ने अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थी, परन्तु शीघ्र ही उसे मुगल बादशाह अकबर का सामना करना पड़ा। अकबर बड़ा महत्वाकांक्षी था। मालवा और गुजरात के धनाढ्य सूबों पर स्थायी अधिकार रखने के लिए आवश्यक था कि मार्ग में पड़ने वाले दुर्ग मुगलों के अधीन हों। ऐसा तभी सम्भव था कि राजपूताना के शासक अकबर की अधीनता स्वीकार कर ले। 1562 ई. में आमेर के कछवाहा राजा ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी। मेवाड़ का शासक अपनी स्वतंत्रता की दुहाई दे रहा था। राजपूताना के अन्य शासक भी मेवाड़ के महाराणा का ही अनुसरण कर रहे थे। मालवा का सुल्तान बाजबहादुर मेवाड़ के राणा की शरण में आया हुआ था। मेड़ता का स्वामी जयमल जो शर्फुद्दीन से परास्त हो गया था, भागकर महाराणा की शरण में आया था। महाराणा उदयसिंह के ये तौर–तरीके मुगल बादशाह अकबर की सत्ता के विरूद्ध चुनौती के परिचायक थे। अकबर ने चित्तौड़ पर आक्रमण करने की तैयारी कर ली। इसकी सूचना राणा के पुत्र शक्तिसिंह ने जो अपने पिता से नाराज होकर अकबर की सेवा में चला गया था, चित्तौड़ पहुँच अपने पिता को दी थी। शक्तिसिंह के वंशज शक्तावत कहलाए। मेवाड़ में भिंडर और बानसी शक्तावतों के प्रमुख ठिकाने थे।[36]

महाराणा उदयसिंह ने अपने सामंतों की राय के अनुसार चित्तौड़ दुर्ग की रक्षा का भार जयमल राठौड़ को सौंपा और वह स्वयं नवनिर्मित राजधानी उदयपुर और उसके आसपास गिरवा की बस्तियों की रक्षा का दायित्व अपने ऊपर लेता हुआ उदयपुर की ओर पलायन कर गया। कुछ इतिहासकारों ने राणा द्वारा चित्तौड़ छोड़ने की घटना को उसकी कायरता का द्योतक बताया, जो सही नहीं है। यह तो राणा की सामरिक नीति का अंग था, एक नई सूझ थी। चित्तौड़ का मोर्चा जयमल के नेतृत्व में रखा गया और दूसरे मोर्चों का नेतृत्व उसने स्वयं किया। शत्रु को दो मोर्चों पर लड़ने के लिए प्रेरित किया। मेवाड़ के पहाड़ी क्षेत्रों में रहकर शत्रु से लम्बी लड़ाई लड़ी जा सकती थी। राणा प्रताप व राणा राजसिंह ने भी राणा उदयसिंह के द्वारा निर्धारित नीति का अनुसरण किया था।

प्रारम्भ में अकबर ने राजपूत शासकों के प्रति वही नीति अपनाई जो उसके पितामह तथा पिता ने अपनाई थी। अर्थात् वह भी राजपूत शक्ति को मुगल सत्ता के प्रसार में बाधक मानता था। अतएव उसने अपनी विजय–योजना के अन्तर्गत राजपूत राज्यों को भी सम्मिलित किया। राजस्थान में सम्पादित विजयों के प्रारम्भिक दौर में कुछ ऐसे भागों को लिया गया जो मुगल सीमा के निकट थे या जहाँ इस्लामी प्रभाव अधिक था। 1556 ई. के अन्त तक मेवात का एक भाग मुगल राज्य का भाग बन चुका था। इसके एक वर्ष के पश्चात् अजमेर और जैतारण विजित कर लिए गए। मारवाड़ की आंतरिक दुर्व्यवस्था ने अकबर की साम्राज्यवादी नीति को राजस्थान में प्रसारित करने में योग दिया। मालदेव की मृत्यु ने उसके मार्ग को प्रशस्त कर दिया। विजय की लालसा से प्रेरित होकर अकबर ने शाही फौजों को मारवाड़ की ओर भेजा जिसके फलस्वरूप मेड़ता तथा जोधपुर का दुर्ग 1562–63 ई. तक मुगलों के अधिकार में आ गये।[37] ये विजयें अकबर की विस्तारवादी नीति का परिणाम थी जिसे उसने अपने दादा एवं पिता से विरासत में पाया था।

अकबर द्वारा मुगल साम्राज्य की पुनर्स्थापना हुई और इसके साथ ही सीमा विस्तार की प्रक्रिया आरंभ हुई। भारतीय इतिहास में नये युग का प्रादुर्भाव हुआ।

राजस्थान के लिए भी यह युग प्रवर्तक सिद्ध हुआ। 1560 ई. में अकबर ने शासन–संचालन का कार्य अपने हाथ में ले लिया। उसने राजपूत शासकों के प्रति नयी नीति निर्धारित की – 'अकबर के विचारपूर्ण मस्तिष्क पर प्रारम्भ से ही राजपूतों की वीरता, सच्चाई तथा उनकी एकनिष्ठ, स्वामीभक्ति का सिक्का जम गया था। उसको दृढ़ विश्वास हो गया था कि राजपूतों को अपने नये स्थापित मुगल साम्राज्य का सुदृढ़ आधार स्तम्भ बनाकर ही वह अफगानों के विरोध, मुसलमान सेनाधिकारियों के विश्वासघात, अपने ही भाइयों के लोभ और तैमूरवंशी मिर्जाओं की कट्टर शत्रुता का सामना कर सकेगा।'[38]

जनवरी, 1562 ई. में आम्बेर के राजा भारमल ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली और उसने अपनी पुत्री का विवाह अकबर के साथ कर दिया। आम्बेर के कछवाहा घराने से अकबर का घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया। अकबर ने भारमल के पुत्र भगवन्तदास, पौत्र कुंवर मानसिंह और उनके अन्य सम्बन्धियों को मुगल साम्राज्य में उच्च पदों पर नियुक्त किया। अकबर को विश्वसनीय व योग्य सेनानायक तथा साहसी योद्धाओं की सेवाएँ प्राप्त हो सकीं।[39]

अकबर को पूर्ण आशा थी कि राजस्थान के अन्य राजपूत राज्य भी आम्बेर के कछवाहा राजा का अनुकरण करेंगे और वे उसकी अधीनता स्वीकार कर लेंगे। उसकी आशा फलीभूत नहीं हुई। मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह का रवैया मुगल विरोधी रहा, अतः अकबर ने चित्तौड़ पर चढ़ाई करने के उद्देश्य से अगस्त, 1567 ई. में अपनी राजधानी से प्रस्थान किया। इसकी सूचना महाराणा उदयसिंह को उसके स्वयं के पुत्र शक्तिसिंह के द्वारा प्राप्त हुई थी। उदयसिंह ने सामंतों, प्रतिष्ठित व्यक्तियों, नागरिकों की समिति को आमंत्रित किया और उनसे मंत्रणा की कि उस संकटपूर्ण घड़ी में किले की रक्षा के लिए क्या उपाय किए जायें। सभी सभासदों का आग्रह था कि उदयसिंह सकुटुम्ब चित्तौड़ छोड़ पहाड़ी क्षेत्र की ओर पलायन कर जायें। इस समय प्रताप भी चित्तौड़ किले में उपस्थित था। उसका आग्रह था कि चित्तौड़ की रक्षा करने हेतु उसे वहीं रहने दिया जाये। इसे किसी ने स्वीकार नहीं किया। प्रताप को भी चित्तौड़ छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा।

चित्तौड़ की रक्षा का दायित्व जयमल मेड़तिया और पत्ता सिसोदिया को दिया गया था। प्रताप व अन्य कोई राजकुमार चित्तौड़ में नहीं रहे, परंतु संकट के समय सब कुछ न्यौछावर करने की अभिलाषा व आतुरता प्रताप में कितनी थी इसकी जानकारी सभी को थी। उस समय प्रताप की आयु 27 वर्ष की थी।[40]

17 दिसम्बर, 1567 ई. के दिन अकबर एक विशाल सेना के साथ चित्तौड़ आ धमका और उसने चित्तौड़ दुर्ग का घेरा डाला। उसने हुसैनकुली खाँ के नेतृत्व में एक शाही सेना उदयसिंह के विरूद्ध पहाड़ी क्षेत्र में भेजी थी। वह निराश होकर लौट आई। अकबर ने चित्तौड़ दुर्ग पर 25 फरवरी, 1567 ई. को अधिकार कर लिया। चित्तौड़ की रक्षा हेतु लड़े गये युद्ध में मेवाड़ी सामन्तों व योद्धाओं ने अनुपम शौर्य और वीरता का प्रदर्शन किया था। अकबर ने भी उनकी भूरि–भूरि प्रशंसा की थी। जयमल राठौड़ और पत्ता चूंडावत की वीरता से तो अकबर इतना प्रभावित हुआ कि उसने इन दोनों वीरों की पाषाण मूर्तियाँ बनवाकर आगरे के किले के द्वार पर प्रतिष्ठित करवाई थीं। चित्तौड़ के आसपास के क्षेत्र पर मुगलों का अधिकार हो गया।

अकबर ने चित्तौड़ का घेरा डाला। 23 फरवरी, 1568 ई. की रात्रि को चित्तौड़ का तीसरा और अंतिम जौहर हुआ। दूसरे दिन घमासान युद्ध हुआ जिसमें सभी राजपूत योद्धा काम आये। चित्तौड़ और माण्डलगढ़ पर मुगलों का अधिकार हो गया। इनके आसपास का क्षेत्र तथा मेवाड़ का पूर्वी भाग उदयसिंह के अधिकार से निकल गया।[41]

अकबर के शासन के प्रारम्भिक काल में मुगल सेनानायकों, प्रशासकों व धर्माधिकारियों का व्यवहार सामान्यतः परम्परागत असहिष्णुता, कट्टरता व धर्मान्धता का ही रहा था। अकबर की उदारता व सहिष्णुता की सोच धीरे–धीरे विकसित हुयी थी।[42] अकबर द्वारा राजपूतों के साथ मित्रता की नीति अपनायी गयी थी, परन्तु अभी तक मुगल दरबार में राजपूत राजाओं और राजकुमारों के मान–सम्मान, मर्यादा आदि की उचित परम्परायें प्रतिष्ठित नहीं हो पायी थी। सर्वाधिकार सम्पन्न सम्राट में निहित था कि वह उनके साथ किस प्रकार का व्यवहार करे। कभी–कभी

अकबर अपने हिंसक और खूंखार मंगोल पूर्वजों की भाँति अपने व्यवहार में निष्ठुर हो जाता था, विशेषकर जब वह जरूरत से ज्यादा मदिरा पान कर लेता तथा क्रोधित हो जाता था। मदमत्त, क्रोधांध स्थिति में अकबर ने राजपूतों के साथ कई बार शालीनता का व्यवहार नहीं किया। इसका उल्लेख दरबारी लेखक अबुल फजल ने अपने ग्रंथ में किया है।[43] राजपूत सरदारों व उनके कुटुम्बियों के साथ अकबर द्वारा किये गये दुर्व्यवहार व अत्याचार का सजीव विवरण अकबरकालीन दलपत विलास ग्रन्थ में भी मिलता है।[44] अकबर का ऐसा व्यवहार छोटे राजपूत सरदारों तक ही सीमित नहीं था। सूरत शहर के किले के सामने आयोजित शिविर में अकबर शराब के नशे में क्रोधित होकर किसी मुद्दे को लेकर मानसिंह से उलझ गया। उसे जमीन पर गिरा दिया गया और उसकी गर्दन को कसकर दबाने लगा। सैयद मुजफ्फर ने जोर लगाकर मानसिंह को अकबर के हाथ से मुक्त किया।[45] अकबर अपने मनोरंजन के लिए राजाओं को अपमानित करने से नहीं चूकता था। मानूची लिखता है कि अकबर ऐसे उपायों की खोज में रहता था कि किस प्रकार सौजन्यता की आड़ लेकर अधीन सरदारों को अपमानित करे।[46] कई बार अकबर मदिरा के नशे में चूर असाधारण व्यवहार करने लगता था। मेहरा के सुप्रसिद्ध कमरगाह शिकार के समय एक रात्रि को कुंवर मानसिंह, माधवसिंह, कुंवर दलपत और अन्य सरदारों की उपस्थिति में पागल की तरह चिल्लाने लगा। हिंदुओं की तरफ देखकर कहने लगा कि राठौड़ तो रज के मालिक हैं, राजा हैं। राजावत भी अच्छे हैं, परन्तु शेखावत तो निरे जाट हैं। इस प्रकार अनेक राजपूत सरदार अकबर द्वारा अपमानित किये जाते थे। इस प्रकार अकबर के अमानवीय व्यवहार से राजपूत सरदारों के सम्मान को ठेस पहुँची थी।[47]

राजपूत सरदारों के साथ अकबर के दुर्व्यवहार सम्बन्धी सारी बातें प्रताप ने सुनी होंगी। अकबर के नागौर दरबार के समय राव चन्द्रसेन वहाँ उपस्थित हुआ था। अकबर के राजपूतों के प्रति व्यवहार से असंतुष्ट होकर राव चन्द्रसेन नागौर से पलायन कर गया था। राव चन्द्रसेन ने राणा प्रताप के राज्यारोहण के समय उपस्थित होकर अकबर द्वारा राजपूतों के प्रति किए गए दुर्व्यवहार सम्बन्धी

जानकारी उसे दी होगी तथा अकबर विरोधी रणनीति तैयार करने के लिए विचार–विमर्श किया होगा। स्वाभिमानी प्रताप के लिए एक विदेशी–विधर्मी विजेता की अधीनता स्वीकार कर उसके दुर्व्यवहार तथा अत्याचारों को वहन करना सर्वथा असंभव ही था। अतएव उसने दृढ़तापूर्वक मुगल–विरोधी नीति का अनुसरण किया। इसके अतिरिक्त प्रताप के लिए कोई दूसरा रास्ता नहीं था। अकबर और प्रताप एक ही उम्र के थे (प्रताप अकबर से लगभग डेढ़ वर्ष बड़ा था)। दोनों अपने–अपने आदर्शों पर अडिग थे, उनकी प्राप्ति के लिए वे सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए उद्यत थे। प्रताप मुगल प्रतिरोध का प्रतीक था। समर्पण को वह मृत्यु से भी बदतर मानता था। प्रताप किसी भी कीमत पर इसके लिए तैयार नहीं था। अकबर और प्रताप के उद्देश्य स्पष्ट और एक दूसरे से भिन्न थे। अतएव दोनों के मध्य युद्ध होना अवश्यम्भावी था।

चित्तौड़ विजय के बाद 1572 ई. तक लगभग सम्पूर्ण राजस्थान पर (मेवाड़ के पर्वतीय क्षेत्र को छोड़कर) मुगलों का प्रभुत्व हो चुका था। अकबर ने मेवाड़ के बचे पर्वतीय राज्य को जीतने का प्रयास कुछ समय तक नहीं किया। वह भारत के अन्य प्रदेशों पर अपनी विजय पताका फहराने में व्यस्त रहा। समस्त उत्तरी, मध्य, पश्चिमी एवं पूर्वी भारत के अधिकांश भाग पर अकबर का आधिपत्य हो जाने के बाद अब बचे मेवाड़ राज्य को स्वतंत्र छोड़ देना उसकी महत्वाकांक्षा और प्रतिष्ठा के प्रतिकूल था। साम्राज्य की व्यवस्था सुचारू रूप से चले तथा निष्कंटक बनी रहे, इसके लिए आवश्यक था कि प्रताप को नतमस्तक करवाया जाय। इसके अतिरिक्त मालवा, गुजरात व समुद्र की ओर जाने वाले मार्ग मेवाड़ी क्षेत्र से निकलते थे। उन्हें सुरक्षित रखना सम्राट का दायित्व बनता था। यह साम्राज्य के हित में भी था। भारत का सार्वभौम सम्राट कहलाये जाने के लिए भी मेवाड़ को जीतना आवश्यक था।[48]

अकबर ने युद्ध द्वारा चित्तौड़ पर अधिकार किया था। उसे आशा थी कि इस बड़ी पराजय, नरसंहार और विध्वंस के बाद मेवाड़ के शासक व सामंतों का मनोबल गिरेगा तथा वे निराशा, भय व पराजय की भावना के वशीभूत होकर अन्य

राजपूत शासकों की भाँति मुगल सत्ता को स्वीकार करने के लिए उद्यत हो जायेंगे। अकबर को उम्मीद थी कि मेवाड़ का नया शासक प्रताप परिस्थितिवश अपनी स्वतंत्रता के लिए हठ नहीं करेगा। जगमाल को सिंहासनाच्युत करने व उसके मुगल दरबार में चले जाने पर यह अपेक्षा की जाती थी कि मेवाड़ में कलह, आंतरिक फूट और पारस्परिक विरोधी गुटों को बल मिलेगा जिसके फलस्वरूप मेवाड़ की शक्ति को क्षति पहुँचेगी। ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। प्रताप के सिंहासनारूढ़ होने पर मेवाड़ी सामंतों व जनता में आत्म–विश्वास उत्पन्न हुआ। उनमें अपार उत्साह और जोश था। वे अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के प्रति आश्वस्त थे, कटिबद्ध थे। ग्वालियर के राजा रामशाह, राव चन्द्रसेन राठौड़, मानसिंह व भाण सोनगरा चौहान, ईडर के राव नारायणदास और पठान सरदार हकीमखाँ का मेवाड़ में उपस्थित होना मुगल–विरोधी गठबंधन का स्पष्ट संकेत था। अकबर इस बात से अवगत था कि उसकी सेवा में रत कई राजपूत व हिन्दू सरदार महाराणा प्रताप के प्रति सहानुभूति रखते थे। इन परिस्थितियों में अकबर के समक्ष एक ही विकल्प था कि यदि राणा प्रताप स्वयं मुगल सत्ता को अंगीकार नहीं करे तो उसके विरूद्ध सैनिक कार्यवाही कर उसे अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जाये।[49]

राजस्थान का मुगल शक्ति के केन्द्र के निकट होना साम्राज्य के लिए संकट का स्रोत था। दिल्ली एवं आगरा को सबल राजपूत राज्यों के पड़ोस में सुरक्षित नहीं माना जा सकता था। राजपूतों की सामरिक क्षमता एवं उनके स्वातंत्र्य प्रेम को अकबर संदेह की दृष्टि से देखता था। यही कारण था कि उसने अपने शासन के प्रारम्भिक काल में इन राज्यों को जीतने का प्रयत्न किया। मेवाड़ की शक्ति तथा एकान्तता अकबर को चुभती थी। इसको समाप्त करने के लिए उसने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। उसकी रणथम्भौर की विजय में भी यही सत्तावादी भावना प्रबल थी। परन्तु समय बीतने के साथ तत्कालीन राजनीति तथा परिस्थिति ने उसे एक नई सूझ दी। अपने राज्यकाल के प्रारम्भिक वर्षों में उसे शाह अबुल माली, बैरमखाँ, माहम अनगा तथा आधमखाँ जैसे हितचिन्तकों से भी

सतर्क रहना और उनकी शक्ति को निर्बल बनाने के लिए जबरदस्त प्रयास करना पड़ा था। इसी प्रकार उजवेगों तथा मिर्जा बन्धुओं जैसे उपद्रवी तत्त्वों के दमन में उसे दरबारी गुटों के सहयोग पर आश्रित रहना पड़ा था। 1580 में हुए विद्रोहों में उसके मंत्री शाह मंसूर का हाथ था। इन विषम परिस्थितियों ने उसे यह सुझाया कि यदि राजपूत जाति का, जो अपने साहस, शौर्य और स्वाभिमान के लिए प्रसिद्ध रही है, सहयोग प्राप्त किया जाय तो इस नये तत्त्व से शक्ति दरबारी गुटों में संतुलन की स्थिति पैदा हो सकेगी जो सम्राट् के पद को अधिक सुरक्षित बना सकेगी। एक भारतीय लड़ाकू जाति पर विश्वास करने से तथा उसे निकट लाने से उसका उपयोग विद्रोही मुगलों, उजबेगों तथा अफगानों के विरूद्ध सफलतापूर्वक किया जा सकता था तथा बहुसंख्यक हिन्दुओं को राज्य के प्रति निष्ठावान् बनाने में सहायता मिल सकती थी।

उदयसिंह ने अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की। वह उदयपुर के पहाड़ी क्षेत्र में ठहर शत्रु से मुकाबला करने के लिए तत्पर था। वह जीवन पर्यंत अपनी नई राजधानी उदयपुर की रक्षार्थ संघर्ष करता रहा। 28 फरवरी, 1572 ई. को महाराणा उदयसिंह का निधन हो गया।[50]

भौगोलिक पृष्ठभूमि

भारतवर्ष में राजपूत राजाओं के रहने वाले प्रदेश का नाम राजस्थान है। राजपूत वीर योद्धा राजाओं, वीरांगनाओं के शौर्य, तेज, पराक्रम के आधार पर अभिन्न क्षेत्र को राजथाना, रजवाड़ा या राजपूताना, राजस्थान आदि नामों से जाना जाताा रहा है।[51]

राजस्थान लगभग तीन लाख पचास हजार वर्ग क्षेत्रफल में फैले विस्तृत भूभाग के पूर्व में बुन्देलखण्ड, पश्चिम में सिन्धु नदी का कछार, उत्तर में सतलज नदी के दक्षिण का मरुभाग वं दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत स्थित है। शहाबुद्दीन गौरी के आक्रमण से पूर्व राजस्थान का विस्तार संभवतः हिमालय तक फैला था।[52] इसके राज्यों में मेवाड़ अथवा उदयपुर, मारवाड़ अथवा जोधपुर, बीकानेर और किशनगढ़, कोटा, बूंदी, आम्बेर आमेर अथवा जयपुर, जैसलमेर एवं भारतवर्ष की

मरुभूमि हैं। इन सभी राज्यों की भौगोलिक स्थिति बहुत–सी बातों में एक दूसरे से भिन्न हैं। आबू पहाड़ के सबसे ऊँचे शिखर पर खड़े होकर देखने से अरावली पहाड़ की 1500 फीट नीची श्रेणी को पार करती हुई दृष्टि मेवाड़ के मैदानों तक पहुँचेगी। चित्तौड़ के करीब ऊँची भूमि पर खड़े होकर देखने से यदि रतनगढ़ और सौंगोली होकर कोटा की ओर जाने वाले रास्ते पर दृष्टिपात किया जाये तो रूसी तातार के छोटे–छोटे मैदानों की तरह के तीन मैदान दिखायी देंगे। अरावली पर्वत विन्ध्याचल से मिला हुआ है। आबू पर खड़े होकर मालवा की भूमि पर दृष्टिपात करने से मालवा के काले मैदान दिखाई देते हैं। विन्ध्याचल के शिखरों से निकलकर उत्तर की ओर बहने वाली अनेक जल धारायें देखने में आती हैं। उनमें कुछ धारायें ऊँचे टीलों से घाटियों पर गिरती हैं और कुछ पहाड़ी रास्तों को पार करती हुई चम्बल नदी में जाकर मिल जाती हैं।[53] कुम्भलमेर से अजमेर तक का सम्पूर्ण भाग मेरवाड़ के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ का मेर नाम की एक पहाड़ी जाति के लोग रहा करते हैं। इस पहाड़ी स्थान की चौड़ाई लगभग 6 से 15 मील तक है। उस स्थान में करीब डेढ़ सौ गांवों की आबादी है। यहाँ पर खेती का काम अधिक होता है। इस पर्वत माला पर खड़े होकर देखने से इसकी चोटियों पर कई एक किले दिखाई देते हैं। अरावली और उसके साथ सम्बन्ध रखने वाली पहाड़ियों पर खनिज और धातु सम्बन्धी अनेक पदार्थ पाये जाते हैं। वहाँ पर रांगे की खानें हैं, उनमें राजाओं का अधिकार रहता है। तामड़ा, नीलमणि, बिल्लौर और साधारण श्रेणी के पन्ने भी मेवाड़ में पाये जाते थे।

अरावली के ऊँचे स्थानों के बाद इस प्रदेश के पठार और मध्य हिन्द की ऊँची और बराबर जमीन कुछ बातों में विशेषता रखती है। इस जमीन की ऊँचाई और विषमता पश्चिम से पूर्व की तरफ मैदानों को पार करने पर साफ–साफ दिखायी देती है। रणथम्भौर के करीब यह ऊँची जमीन अनेक पंक्तियों में बदलती हुई दिखायी देती है। सूर्य की धूप में उसके शिखर श्वेत रंग के मालूम होते हैं। यहाँ की नदियों का प्रवाह बड़ी बड़ी तेजी के साथ बहता हुआ दिखायी देता है। उनमें चार नदियाँ अपनी तेज धारा के लिए अधिक प्रसिद्ध हैं। इस ऊँची और

बराबर जमीन का धरातल दूसरे ही प्रकार का है। कोटा के आगे की विस्तृत चट्टान पर वनस्पति का पूर्ण अभाव है। यहाँ की जमीन खनिज पदार्थों के लिये अच्छी नहीं समझी जाती। यहाँ पर सीसा और लोहा पाया जाता है। [54]

मध्य हिन्द की नदियों में चम्बल नदी सबसे बड़ी है। उसके बहुत से सोते विन्ध्याचल पर्वत के बीच में हैं। इस नदी की लम्बाई पाँच सौ मील से अधिक है।सिंधिया, चन्द्रावत, सिसोदिया, हाड़ा, गौड़, जार्दू, सीकरवाल, गूजर, जाट, तोंमर, चौहान, भदौरिया, कछवाहा, सेंगर और बुन्देला आदि अनेक जातियां निवास चम्बल और कुंवारी नदियों के बीच में है। लूनी नदी के मार्ग की लम्बाई उसके आरम्भ से होकर अन्त तक 300 मील से अधिक है।[55] दक्षिण की तरफ लूनी नदी के उत्तर तरफ से और पूर्व की ओर शेखाबाटी की सीमा से रेतीले भाग की शुरूआत होती है। बीकानेर, जैसलमेर आदि सभी रेतीले जमीन पर हैं। जैसलमेर मरुस्थल से घिरा हुआ है। यहां का दुर्ग एक पहाड़ी पर कई सौ फीट की ऊँचाई पर बना है। राजस्थान के जो प्रदेश इस मरुस्थली भूमि पर हैं, उनको मरुभूमि के नाम से ही लोग अधिक मानते हैं।

लूनी नदी के बालोतरा स्थान से लेकर उसके समस्त घाट और उमरसुमरा तथा जैसलमेर के पश्चिमी हिस्से बिल्कुल सूनसान तथा उजाड़ व सूखी जमीन हैं। लेकिन सतलज नदी से लेकर पांच सौ मील की लम्बाई और लगभग पचास मील की चौड़ाई तक की सारी भूमि अनेक प्रकार की चीजों के लिये उपयोगी है। इन स्थानों पर बहुत से झरने हैं। जैसलमेर के निकट एक पहाड़ी है जिसमें पीले पत्थर अधिक पाये जाते हैं और जिसके खूबसूरत पत्थर इस देश से अरब देश तक की अच्छी इमारतों में लगाये गये हैं।[56]

वर्तमान में राजस्थान राज्य 24 देशी राज्यों तथा अजमेर के विलय की इकाई है जो $22^0$3, $30^0$12 उत्तर अक्षांश और $69^0$30 से $78^0$17 पूर्व देशान्तर के बीच फैला हुआ है। इसका क्षेत्रफल 3,42,440 वर्ग किलोमीटर है तथा जनसंख्या (वर्ष 2001) 5,64,73,122 के लगभग है। राजस्थान के पश्चिम व उत्तर–पश्चिम में

पाकिस्तान, उत्तर तथा उत्तर–पूर्व में पंजाब और हरियाणा, पूर्व में उत्तर–प्रदेश, दक्षिण–पूर्व में मध्यप्रदेश एवं दक्षिण में गुजरात के राज्य हैं।[57]

भौगोलिक दृष्टि से राजस्थान के दो प्रमुख भाग हैं – एक पश्चिमोत्तर और दूसरा दक्षिण–पूर्वी। प्रथम भाग में रेगिस्तान और द्वितीय भाग में मैदानी व पठारी भाग सम्मिलित हैं। इन दोनों भागों के बीचोंबीच अर्द्धवती पर्वत की श्रृंखलाएँ ईशान कोण से प्रारम्भ होकर नैऋत्य कोण तक अर्थात् दिल्ली से आरम्भ होकर सिरोही तक फैली हुई है। उत्तर में ये श्रेणियाँ बहुत चौड़ी नहीं हैं, परन्तु अजमेर से ज्यों–ज्यों हम आगे बढ़ते हैं, ये चौड़ी व ऊँची होती जाती हैं। डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, उदयपुर और सिरोही जिले लगभग इन श्रेणियों से ढँके हुए हैं। अरावली पहाड़ का सबसे ऊँचा भाग सिरोही जिले में है जो आबू पहाड़ के नाम से विख्यात है। इसी पर्वतमाला की एक विलग श्रेणी अलवर, अजमेर और हाड़ौती (कोटा–बूँदी) की विलग श्रेणियाँ राजस्थान के पठारी भाग को बनाती हैं।

राजस्थान का पश्चिमोत्तर भाग समतल है परन्तु इसका अधिकांश भाग मरूस्थल है जिसमें मारवाड़, बीकानेर और जैसलमेर के रेगिस्तान हैं जो उपजाऊ नहीं हैं। दक्षिण–पूर्वी भाग में जगह–जगह मैदानी भाग हैं। इनमें कई नदियाँ बहती हैं जो भूभाग को उपजाऊ बनाती हैं। इस भाग में बहने वाली नदियों में अधिकांश मध्य भारत से निकलती हैं जिनमें चंबल, कालीसिंध, पार्वती एवं माही प्रमुख हैं। राजस्थान में बहने वाली सबसे बड़ी नदी चंबल है, जो मध्यप्रदेश से निकलकर भैसरोडगढ़, कोटा, केशवराय–पाटण और धौलपुर के भागों में बहकर यमुना में जा मिलती है। कालीसिंध, झालावाड़ तथा कोटा के भूभाग को सींचती है। पार्वती टोंक तथा कोटा में बहती हुई चंबल में जा मिलती है। माही डूँगरपुर और बाँसवाड़ा के जिलों में बहती हुई गुजरात में प्रवेश कर खंभात की खाड़ी में जा गिरती है। बनास कुंभलगढ़ से निकलकर उदयपुर, जयपुर, बूँदी, टोंक और करौली जिलों में बहती हुई ग्वालियर के पास चंबल में जा मिलती है। लूणी नदी अजमेर के पास से निकल कर जोधपुर जिले में बहती हुई रण में विलीन होती है।[58]

अर्वली के दक्षिण–पश्चिमी व दक्षिण–पूर्वी भाग तथा पश्चिमी ढाल पर घने वनों के उल्लेख मिलते हैं जिनमें से अधिकांश कट चुके हैं या जिनसे प्राप्त भूमि में बस्तियाँ हो गई हैं। जो जंगल बाकी रहे हैं उनमें सालर, महुआ, खेर, नीम, गूलर, ढाक, आम, जामुन, बबूल और कहीं–कहीं देशी सागवान के वृक्ष मिलते हैं। धोक, खेर तथा खजूर की लकड़ी इमारतों में काम आती है और बाकी कुछ लकड़ी का किंवाड़ों में या जलाने में उपयोग किया जाता है।

राजस्थान की भौगोलिक स्थिति और प्राकृतिक बनावट ने यहाँ के जनजीवन व संस्कृति को अत्यधिक प्रभावित किया है। अर्वली पर्वत श्रेणी के अंचलों ने यहाँ की मौलिक जनजाति को बाहरी प्रभाव से इस प्रकार अछूता रखा कि वे सदियों तक प्राचीन भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रख सके। यही कारण है कि प्राचीन भारत के जनजीवन, मान्यताओं तथा विचारों की झलक यदि हम आज भी देखना चाहें तो अक्षुण्ण रूप में राजस्थान में ही देखने को मिलती है। जब विदेशी आक्रमणों से उत्तरी भारत आक्रान्त था, राजस्थान इन पर्वतीय दीवारों के कारण इनके कुप्रभावों से बचा रहा। ऐसी परिस्थिति में यहाँ दीर्घकाल तक सुव्यवस्था और शान्ति रह सकी थी और संस्कृति को प्रश्रय मिलता रहा।[59]

राजस्थान में विकट पहाड़, बीहड़ घाटियाँ तथा घने जंगल पाये जाते हैं। राजस्थान की पहाड़ियाँ–घाटियाँ जहाँ एक तरफ मुगल सैनिक अभियान में सहायक सिद्ध हुए वहीं दूसरी तरफ फल–फूलों के बाहुल्य एवं रासायनिक तत्वों की विद्यमानता के कारण भूमि में उर्वरा–शक्ति पर्याप्त मात्रा में व्याप्त होने से, युद्धों में निरन्तर संलग्न होने के बावजूद आर्थिक संकट का सामना नहीं करना पड़ा। राजस्थान की इस भौगोलिक संरचना के कारण ही वह अकबर की साम्राज्यवादी शक्ति के लिए उत्तम थी।

राजस्थान की भूमि ऊबड़–खाबड़ है। इसके पहाड़ी क्रम में अरावली पर्वत श्रेणी प्रमुख है। अरावली शब्द का अर्थ है आरा या आड़ा याने रूकावट और टेढ़ापन। पश्चिमी पर्वतमाला, उत्तर में दिवेर से लेकर दक्षिण में देवल तक सम्पूर्ण पश्चिमी भाग में फैली हुई है। उत्तर में अजमेर–मेरवाड़ा की तरफ उसकी ऊँचाई

समुद्र की सतह से 2383 फीट है। चौड़ाई अधिक नहीं है। दक्षिण–पश्चिम की ओर इसकी ऊँचाई में निरन्तर वृद्धि होती गई है। यह ऊँचाई कुम्भलगढ़ पर 3568 फीट है और जरगा पहाड़ पर इसकी ऊँचाई 4315 फीट तक पहुँच गई है।[60] इन पहाड़ियों में तंग मार्ग हैं जिन्हें नाल कहते हैं। यातायात की दृष्टि से ये अत्यन्त उपयोगी हैं। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाल जीलवाड़ा के पास जीलवाड़ा की नाल, जिसे पागल्या नाल के नाम से भी सम्बोधित करते हैं, के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह नाल लगभग 4 मील लम्बी एवं अत्यन्त संकड़ी है। इसके अतिरिक्त मेवाड़ व मारवाड़ को जोड़ने वाली देसूरी की नाल, सोमेश्वर की नाल (देसूरी के उत्तर में स्थित), हाथी गुड़ा की नाल (देसूरी से दक्षिण में लगभग 5 मील की दूरी पर स्थित)[61] तथा भाणपुरा की नाल (घाणेराव से दक्षिण में लगभग 6 मील के फासले पर स्थित) उल्लेखनीय है। इन नालों के रास्तों से व्यापार होता था। इन मार्गों को सुरक्षित रखने के लिए वहाँ सिपाहियों का पहरा रहता था जिससे अवांछनीय तत्वों के आवागमन को रोका जा सके। वहाँ रक्षात्मक चौकियाँ भी स्थापित थीं क्योंकि इन्हीं मार्गों से शत्रुओं का आवागमन होता था। हाथी गुड़ा की नाल में युद्ध में काम आने वाले योद्धाओं के अनेक स्मारक बने हुए हैं।[62] इन पर्वत श्रेणियों से अनेक नाले व नदियाँ निकलती हैं जो मेवाड़ के केन्द्रीय भाग को उपजाऊ बनाती हैं। इस पहाड़ी प्रदेश के मध्य में कहीं–कहीं मैदानी भाग के दर्शन भी हो जाते हैं, जहाँ खेती की जाती है और वहाँ गाँव व छोटे–छोटे कस्बे हैं। दक्षिण में डूंगरपुर की सीमा से लगाकर पश्चिम में सिरोही की सीमा तक का सम्पूर्ण हिस्सा ऊँचा होने के कारण 'मगरे' के नाम से जाना जाता है। इस भाग में लकड़ी, कोयला, खनिज पदार्थ, औषधियाँ आदि की सम्पन्नता है।

राजस्थान पर्वत श्रेणियाँ कुछ कम ऊँचाई पर हैं, परन्तु इनका फैलाव काफी विस्तृत है। यह जंगलाच्छादित पर्वतीय क्षे 'छप्पन'[63] के नाम से विख्यात है। यहाँ की घाटियाँ बड़ी दुर्गम हैं। यहाँ की विकटता ने मेवाड़ को आक्रमणकारियों से सुरक्षित रखने में सहायता पहुँचाई थी। महाराणा प्रताप द्वारा हल्दीघाटी के युद्ध के उपरान्त इस क्षेत्र की पर्वत श्रेणियों में स्थित चावंड को अपनी राजधानी बनाई थी।

जंगली उपज और खनिज पदार्थों की प्रचुरता के लिए यह क्षेत्र प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र के ग्राम जावर के निकट सीसा और चाँदी की खानें हैं। यहाँ से प्रतिवर्ष 3 लाख रूपये की चाँदी निकाली जाती थी। इस भाग में इमली, महुआ, सागवान, बड़, पीपल, सीसम, गूलर, जामुन, खजूर, खेजड़ा, सालर, सेमल, गूगल आदि वृक्षों का बाहुल्य है। बानसी और घरियावद के जंगलों में बाँस और इमारती लकड़ी बड़ी मात्रा में उपलब्ध है। सीताफल और आम भी इस क्षेत्र की प्रमुख उपज है। पर्वतीय प्रदेशों एवं मैदानी भागों में प्रभूत मात्रा में औषधियाँ भी उपलब्ध होती हैं।

विभिन्न प्रकार के पाषाणों से युक्त स्थानीय पहाड़ी प्रदेश भूगर्भ–शास्त्रियों के लिए अत्यन्त आकर्षण का बिन्दु रहा है। अरावली पर्वत–श्रृंखला में हमें कई प्रकार के पाषाण उपलब्ध होते हैं। भू–शास्त्रियों के अनुसंधान के अनुसार इस प्रदेश में ग्रेनाइट, विभिन्न प्रकार के क्वार्ट्ज (विशेष प्रकार का चमकीला पत्थर) साइनाइट की चट्टानें, हार्न स्टोन (शीघ्र टूटने वाला एक विशेष प्रकार का चमकीला पत्थर) पौरफिरी (विशेष प्रकार का कठोर पत्थर) आदि पाषाण प्रभूत मात्रा में उपलब्ध हैं। खैरवाड़ा व जावर के आसपास नीले एवं लाल वर्ण के मार्ल्स (मिट्टी व रेत से युक्त पाषाण) प्राप्त होते हैं। यहाँ वास्तु–निर्माण हेतु सामान्य डॉलेराइट व बॉसाल्ट पत्थरों का उपयोग होता है जो उदयपुर के निकट बड़ी मात्रा में उपलब्ध हैं। मटोट एवं बांसदर पहाड़ की खान से क्रमशः 20 फीट और 14 फीट लम्बी पट्टियाँ निकाली जाती हैं। राजनगर का संगमरमर प्रसिद्ध है। राजसमुद्र के पाल के निर्माण में इसी पत्थर का प्रयोग किया गया है। इस संगमरमर से चूना भी तैयार किया जाता है। चित्तौड़ में संगमूसा (काला चमकीला पत्थर) उपलब्ध है। देव–प्रतिमाओं एवं प्यालों आदि के निर्माण के लिए उपयुक्त मिट्टी का स्लेट–पत्थर ऋषभदेव व खैरवाड़ा के बीच पर्याप्त मात्रा में मिलता है।[64]

राजस्थान में कीमती पत्थरों के अतिरिक्त धातुओं का भी बाहुल्य है। जावर के निकट चांदी व सीसे की खानें हैं। मांडलगढ़ के पास गुहली, जहाजपुर के निकट मनोहरपुर व बड़ी–सादड़ी के पास मारसोला नामक स्थानों पर लोहे की

खानें विद्यमान हैं। यहाँ ताँबा भी प्राप्त है। मांडलपुर तथा भीलवाड़ा के पास तामड़ा (रक्तमणि) नामक कीमती पत्थर उपलब्ध होता है।[65]

राजस्थान में वर्षभर प्रवाहित होने वाली नदियाँ नहीं हैं फिर भी मैदानी भाग को उपजाऊ बनाने में इनका बड़ा योगदान रहा है। चम्बल नदी मेवाड़ के कुछ भाग में से होकर बहती है। वास्तव में यह मेवाड़ की नदी नहीं कही जा सकती। मेवाड़ की सर्वाधिक महत्व की नदी बनास है। इसका उद्‌गम कुम्भलगढ़ के निकट है। बेड़च, कोठारी और मनाल इसकी सहायक नदियाँ हैं। यह नदी पर्वतीय क्षेत्र में सर्पाकार गति से बहती हुई मैदानी भाग को सींचती हुई नाथद्वारा, मांडलगढ़ और जहाजपुर के पास से गुजरती हुई चम्बल नदी में समा जाती है। यह वर्षभर बहने वाली नदी नहीं है, फिर भी इसमें जगह–जगह पर बने हुए गड्ढों में वर्ष भर पानी जमा रहता है। बनास नदी के किनारे पर बसे खमनोर गाँव के निकट हल्दीघाटी का युद्ध लड़ा गया था। जाकुम और वाकल मेवाड़ के दक्षिण में बहने वाली नदियाँ हैं जो वर्षा ऋतु में बड़े वेग से बहती हैं। इनका पानी स्वास्थ्यप्रद नहीं है। सोम नदी डूंगरपुर की सीमा पर से गुजरती है। वह माही नदी में मिल जाती है। प्राचीन सोमनाथ का मंदिर इसी नदी के किनारे पर स्थित है। इन नदियों ने मेवाड़ की मैदानी भूमि को उपजाऊ बनाया है। वर्षा ऋतु में आक्रमणकारियों को समय–समय पर बड़ी हानि उठानी पड़ी थी। उन्हें असफलता का मुँह देखना पड़ा था। कुम्भा के समय मालवा व गुजरात के सुल्तानों को इन नदियों के फलस्वरूप असफल होकर लौटना पड़ा था।[66]

वीर प्रसविनी राजस्थानी धरा की पर्वताच्छादित दक्षिणात्य कुक्षि में स्थित मेदपाट[67] (मेवाड़) प्रदेश अपनी भौगोलिक विशेषताओं एवं महती ऐतिहासिक परंपराओं के कारण देश के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान रखता है। मेवाड़ राज्य की सीमा समय–समय पर घटती–बढ़ती रही है। कुम्भा एवं सांगा जैसे प्रतापी राजाओं के काल में इसकी सीमा उत्तर–पूर्व में बयाना, दक्षिण में रेवाकांटा महीकांटा, पश्चिमोत्तर में मंडोवर व रूण, पश्चिम में पालनपुर और दक्षिण–पूर्व में मालवा तक प्रसारित थीं[68] ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ सन्धि होने के पश्चात्

(22 जनवरी 1818 ई.) मेवाड़ प्रदेश 23.49^0 से 25.58^0 उत्तरी अक्षांश और 73.1^0 से 75.49^0 पूर्व देशान्तर के मध्य स्थित था। इसका क्षेत्रफल 12.691 वर्गमील था।[69] इसके उत्तर में अजमेर, मेरवाड़ा और शाहपुरा राज्य थे। पश्चिम में मारवाड़ और सिरोही के क्षेत्र थे। दक्षिण–पश्चिम में ईडर तथा दक्षिण में डूंगरपुर, बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ के राज्य थे। पूर्व में नीमच व निम्बाहेड़ा के जिले तथा बूंदी और कोटा के प्रदेश थे। ईशान कोण में मेवाड़ बूंदी और कुछ अंशों तक जयपुर प्रदेश से घिरा हुआ था।

राजस्थान में मेवाड़ के उत्तर–पूर्व में उभरा हुआ हरा–भरा क्षेत्र है जिसकी ऊँचाई कहीं–कहीं 2000 फीट से भी अधिक है। इस पठारी भाग को उपरमाल[70] कहते हैं जो उपज की दृष्टि से सम्पन्न है। समृद्धि के कारण आक्रमणकारियों के लिए यह आकर्षण का क्षेत्र रहा। बिजोलिया, मांडलगढ़, भैंसरोड़गढ़, मैनाल तथा जहाजपुर जैसे सम्पन्न कस्बे इसी क्षेत्र में हैं।

मेवाड़ के दक्षिणी–पश्चिमी भाग में भीलों की आबादी अधिक थी। प्रताप ने उनके महत्व को समझ कर उन्हें पहाड़ों और जंगलों से निकाल कर रक्षा पंक्ति में उचित स्थान दिया। पहाड़ी क्षेत्र जहाँ युद्ध होने की संभावना थी, भील समुदाय को जितनी अधिक जानकारी थी उतनी और किसी समुदाय को नहीं थी। पहाड़ी क्षेत्र में वे बड़ी दक्षता व तेजी से चल–फिर सकते थे। भीलों के सहयोग और सद्भावना से साम्राज्यवादी अकबर की शक्तिशाली सेना का मुकाबला करने में प्रताप सक्षम हो सका था।[71]

राजस्थान के मेवाड़ के गौरवमय इतिहास की हमारे देश में एक पृथक् पहचान है। इसकी विशेषता रही है कि यहाँ तेरह शताब्दियों तक एक राजवंश का वर्चस्व बना रहा। यहाँ के वीर व सशक्त शासकों ने अपनी मातृ–भूमि की रक्षा हेतु विषम कठिनाअयों का सामना किया तथा यातनायें सहन कीं। यहाँ के वीर और वीरांगनाओं ने स्वतंत्रता की बलिवेदी पर सहर्ष प्राणाहुति देते हुए राष्ट्रीय सांस्कृतिक अस्मिता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए सतत् प्रयास किए। मेवाड़ी शासकों के शौर्यपूर्ण कार्यकलापों की अभिव्यक्ति देश–विदेश में गाथाओं और

कथाओं के माध्यम से होती रही है। मुगल–सत्ता के उदयकाल तक मेवाड़ के राणाओं की कीर्ति व उनके स्वातंत्र्य–प्रेम का मार्तण्ड सर्वत्र जगमगाता रहा। सर्वशक्तिमान मुगल सम्राट् अकबर के काल में जब राजपूताने के राजपूत राजाओं ने परंपरागत, क्षत्रियोचित भावनाओं को तिलांजलि दे अपने निजी सुख–स्वार्थ व वैभव के चक्कर में मुगल सत्ता के समक्ष सर्वस्व समर्पित कर दिया था, उस समय मेवाड़ की गरिमा मंडित ऐतिहासिक परंपराओं से उत्प्रेरित होकर महाराणा प्रताप ने अपने देश, जाति और कुल गौरव के रक्षार्थ जीवन पर्यन्त मुगलों के विरूद्ध संघर्ष किया तथा असाधारण साहस और अद्‌भुत शौर्य का परिचय दिया। महाराणा प्रताप शौर्य, साहस, त्याग, उदारता, कर्तव्यनिष्ठा आदि का प्रतीक बन गया है। उसका अपने स्वातंत्र्य प्रेम व देशाभिमान जैसे उदात्त गुणों के फलस्वरूप देशवासियों के हृदय में एक विशेष स्थान है।[72]

राजपूतों ने अपनी मातृभूमि की रक्षा व स्वतंत्रता के निमित्त जिन कठिनाइयों का सामना किया व यातनाओं को वहन किया, जानकर रोमांच होता है। परवर्ती पीढ़ी के लिए वे सदैव प्रेरणास्पद रहेंगी। स्थानीय वीरों एवं वीरांगनाओं ने मातृभूति की बलिवेदी पर सहर्ष प्राणाहुति देकर रोमांचकारी इतिहास सृजन कर अनूठा आदर्श प्रस्तुत किया है, जिसकी समता अन्य देशों में मिलनी कठिन है। राजपूत वीरों की जौहर की भावना हमें सदियों तक स्वतंत्रता के महत्व का उज्ज्वल पाठ पढ़ाती रहेगी। राजपूत की इस गरिमा मंडित ऐतिहासिक परंपरा के एक सपूत महाराणा प्रताप का देश के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान है। राजपूतों ने अपने देश, जाति, धर्म और कुल–गौरव के रक्षार्थ शक्तिशाली मुगल सम्राट अकबर के विरूद्ध संघर्ष किया तथा असाधारण साहस और अद्‌भुत शौर्य का परिचय दिया।

राजस्थान में छोटी–बड़ी अनेक झीलें हैं जिनमें पर्याप्त पानी रहता है। इनसे सिंचाई का कार्य भी होता है। विस्तार एवं प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से इस प्रदेश की चार झीलें उल्लेखनीय हैं, पिछोला, उदयसागर, राजसमन्द और जयसमन्द। उदयपुर के दक्षिण में 32 मील की दूरी पर स्थित जयसमन्द झील मानव निर्मित झीलों में विश्व की सबसे बड़ी झील मानी जाती है। केप्टिन येट का

ऐसा मानना है। यह झील लगभग नौ मील लम्बी एवं छः मील चौड़ी है। इन झीलों के अतिरिक्त मेवाड़ में जगह–जगह पर जलाशय बने हुए हैं जिनके माध्यम से आसपास की भूमि की सिंचाई की जाती है।

राजस्थान की जलवायु स्थानीय लोगों के लिए सामान्यतः लाभप्रद रही है परन्तु बाहर से आने वालों के लिए वह ज्यादा सुखद नहीं मानी गयी है। पर्वतीय मेवाड़ व दक्षिणी मेवाड़ की जलवायु स्वास्थ्यवर्द्धक नहीं है। जहाँगीर[73] और नैणसी[74] ने चावंड के पहाड़ी क्षेत्र की जलवायु को हानिकारक बताया है। भूमि की ऊँचाई के कारण गर्मी के दिनों में मेवाड़ में अधिक गर्मी पड़ती है। बदायूँनी[75] लिखता है कि दोपहर के समय हल्दीघाटी में इतनी भयंकर गर्मी थी कि उसकी खोपड़ी का खून उबलने लगा। मेवाड़ में वर्षा की भी असमानता रहती है। सुजानराय खत्री[76] लिखता है कि चित्तौड़ में खूब वर्षा होती थी, परन्तु मेवाड़ के अन्य कई क्षेत्रों में वर्षा का अभाव रहता था। मेवाड़ की जलवायु आक्रमणकारियों के लिए हानिकारक रही। उन्हें विषम जलवायु के कारण अनेक कठिनाईयों से जूझना पड़ा था। तारीखे सलातीन–ए–चकताई[77] के लेखक का कथन है कि हानिप्रद जलवायु के कारण कई योद्धाओं को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा था।

भौगोलिक विशेषताओं के फलस्वरूप राजस्थान में सुरक्षा के साधन सुलभ थे। पर्वतीय प्रदेशों में अनेक रक्षात्मक चौकियाँ एवं अन्य दुर्गों का बाहुल्य रहा। वे देश की रक्षात्मक कार्यवाहियों के लिए अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुए हैं। सैनिक प्रतिरक्षा के लिए पहाड़ों की चोटियों पर समय–समय पर दुर्गों का निर्माण होता रहा जिनमें चित्तौड़गढ़, कुम्भलगढ़, मांडलगढ़ आदि प्रमुख हैं। इन दुर्गों में बड़ी संख्या में सैनिकों के निवास के लिए व्यवस्था रहती थी। वहाँ खेती व अन्य उत्पादन के लिए पर्याप्त भूमि थी। शत्रुओं के आक्रमणों से बचने के लिए इन दुर्गों का बड़ा महत्व था। यदि इन दुर्गों का घेरा दीर्घकाल तक चलता तो ये दुर्ग सुरक्षा की दृष्टि से घातक भी प्रमाणित हो सकते थे। अकबर ने चित्तौड़ को लम्बे समय तक घेरे रखा। दुर्ग की शक्ति धीरे–धीरे क्षीण होती गई। अंततः दुर्ग के

सैनिकों के लिए अपने प्राणों की आहुति देने के अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प नहीं रहा।

सैनिक साधनों में आदिवासियों का भी एक विशिष्ट स्थान रहा है। ये दक्षिणी मेवाड़ में बड़ी संख्या में रहते हैं। प्रताप की पैदल सेना में आदिवासियों का, जिनमें भीलों की बहुलता थी[78], बहुत बड़ा योगदान रहा। भील स्वातंत्र्य प्रिय, परिश्रमी और निर्भीक थे। अपनी धरती के प्रति उनका बेहद लगाव था। वे किसी शत्रु को अपने प्रदेश में प्रवेश नहीं होने देते थे। वे सशस्त्र उनका विरोध करते थे। तीर–कमान ही उनके मुख्य शस्त्र थे। मेवाड़ के जंगलाच्छादित घाटियों व पर्वतीय क्षेत्र में लड़ी जाने वाली लड़ाइयों के लिये यहाँ के शासकों के पास मानव शक्ति का कभी अभाव नहीं रहा क्योंकि इसकी पूर्ति भीलों द्वारा की जाती रही। राणा प्रताप की सफलता का राज बहुत अंशों तक उसके सहयोगी भील समुदाय को जाता है। सामरिक दृष्टि से छापामार युद्ध प्रणाली के लिए ये पर्वतीय क्षेत्र बड़े उपयुक्त प्रमाणित हुए। हल्दीघाटी के युद्ध के पश्चात् राणा प्रताप ने छापामार युद्ध प्रणाली का सफल प्रयोग किया था।

पर्वतों के राजनीतिक प्रभाव के साथ–साथ सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव भी स्पष्ट है। पर्वतों से आर्थिक दृष्टि से उपयोगी बहुमूल्य औद्योगिक सामग्री भी उपलब्ध होती रही है तथा विभिन्न नदियों का उद्‌गम भी इन पर्वतों से ही हुआ है। मुहणोत नैणसी ने ख्यात में मेवाड़ की भौगोलिक स्थिति का विवरण दिया है। इस प्रसंग में उसने पर्वत–श्रृंखलाओं, घाटियों, रास्तों, नगरों, ग्रामों, नदी–नालों, प्राकृतिक खनिजों, पेड़–पौघों और फसलों का विवरण दिया है। नैणसी ने प्रताप के शासनकाल के 50–60 वर्ष बाद का वर्णन किया है। इस अल्प अवधि में भौगोलिक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था।[79]

नैणसी की ख्यात से ज्ञात होता है कि पहाड़ों के बीच स्थान–स्थान पर कुण्ड और जलाशय बने हुए थे तथा झरने बहते थे। नैणसी लिखता है कि 'जरगा ऊपर पाणी घणों'। कुम्भलगढ़ से 10 कोस दूरी पर स्थित मछावला पहाड़ के पास भी पानी खूब मात्रा में मिलता था। ख्यात लेखक का कथन है कि कहीं–कहीं

पानी तो है, परन्तु स्वास्थ्यप्रद नहीं है। ख्यात के अनुसार मेवाड़ के पहाड़ी क्षेत्र में पानी की कोई समस्या नहीं है। महाराणा उदयसिंह द्वारा निर्मित उदयसागर जल–पूर्ति का स्थायी स्रोत है। पहाड़ों में नदियों के उद्‌गम हैं।

विकट पहाड़ों, बीहड़ घाटियों और घने जंगलों के बीच स्थित जावर, राहंग तथा नाहेसा क्षेत्र महाराणा के विपत्ति काल में निवास करने के लिए सुरक्षित स्थान थे। ये स्थान विकट होने के साथ उपजाऊ भी थे। जवास और जावर के बीच पीपलदड़ी और सिरोड़ के निकट चावल व गेहूँ की अच्छी फसलें होती थीं। जरगा व राहंग के बीच देसहरा (देसूरी) क्षेत्र सरसब्ज था। वहाँ आम के वृक्षों की बहुलता थी तथा गेहूँ, चना व उड़द की पैदावार होती थी। इनके अतिरिक्त बाटाबाठरडा में गेहूँ पैदा होता था। वहाँ आम के भी पेड़ बड़ी संख्या में थे। बेगूं के क्षेत्र में गेहूँ और चने की खेती होती थी और नाहेसर में गेहूँ व चना के अलावा मक्का और उड़द की पैदावार भी होती थी। इस क्षेत्र में खिरनी और इमली के पेड़ों की भी बहुलता है। अतः स्पष्ट है कि मेवाड़ के पर्वतीय क्षेत्र में अनाज की कमी नहीं थी। फल–फूल, आम, सीताफल, जामुन आदि की बहुलता थी।

नैणसी की ख्यात से ज्ञात होता है कि जावर में स्थित चाँदी की खान से प्रतिदिन 400–500 रूपयों की आय हो जाती थी। यहाँ की खानों से जस्ता भी निकाला जाता था। राणा प्रताप को इन खानों से अच्छी आय होती थी। देसहरा (देसूरी) में खरबड़, चन्देल, बोड़ाणा, चंदाणा राजपूतों के पास सांसण की भूमि थी, फिर भी वे दूसरे कृषकों की भाँति सरकार को भोग देते थे। प्रताप के लिए आय के साधन खुले थे। आय एकत्र करने की व्यवस्था थी। आय के अन्य कई साधन भी थे।

नैणसी के विवरण से ज्ञात होता है कि राणा प्रताप की आर्थिक स्थिति दयनीय नहीं थी जैसा कि टॉड व कतिपय अन्य इतिहासकारों ने चित्रित किया है। टॉड द्वारा वर्णित आर्थिक कष्टों की कहानी मात्र कल्पना है। यह सही है कि मुगलों के निरन्तर आक्रमणों ने मेवाड़ की खेती–बाड़ी को क्षति पहुँचाई, इनका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा, परंतु ऐसा कभी नहीं हुआ कि मेवाड़वासियों को खाद्यान्न के

लिए कभी दूसरे राज्य पर आश्रित रहना पड़ा हो या भीषण अकाल जैसी स्थिति का सामना करना पड़ा हो। मुगलों के आक्रमणों से जब समतल भूमि पर की जाने वाली कृषि को हानि उठानी पड़ी तो खेती–बाड़ी का कार्य पहाड़ों पर किया जाने लगा। वहाँ के लोगों ने भी सुरक्षा की दृष्टि से अपना निवास स्थान पहाड़ों में स्थापित कर लिया। महाराणा और आम लोगों का जीवन अस्थिर हो गया था, इसलिए उनकी मनोवृत्ति ऐसी बन गई थी कि उन्हें आवश्यकतानुसार वस्तुएँ उपलब्ध हो जायें, इसी में उनका संतोष था। उनमें संग्रह करने की प्रवृत्ति नहीं रही। महाराणा का जीवन भी परिस्थितियों के अनुसार सादगीपूर्ण था। समयानुकूल उनकी आय व व्यय में संतुलन था।

नैणसी ने राजस्थान में बसने वाली जातियों का उल्लेख किया है। ख्यात के अनुसार उदयपुर में देवड़ा और चौहान, देलवाड़ा में झाला, समीचा ग्राम में कुम्भावत, सिसोदिया, देसहरा (देसूरी) में चंदेल, बोड़ाणा, चंदाणा राजपूत, धर्यावद में छप्पनिया राठौड़ व चौहान, सलुम्बर व रत्नपुरी की चौरासी (बेगू) में चूंडावत, बाठरड़ा व बाम्मोर में सारंगदेवोत, कोठारिया में चौहान और बिजोलिया में पंवारों के ठिकाने थे। सरणुवा पहाड़ियों के पास के गाँवों में सीरवी, पटेल, कुलबी व बनियों का निवास था तथा पथार के पर्वतीय क्षेत्र में गूजर, ब्राह्मण और नाहेसर में बनिये व कुलबी जाति के लोगों की बस्तियाँ थीं। इन सभी की राणा के प्रति आदर और श्रद्धा थी। उनमें राष्ट्रीयता व स्वामी–भक्ति की भावना प्रबल थी। प्रताप द्वारा किए गए छापामार युद्ध में सभी वर्गों का पूर्ण सहयोग था। इनके अतिरिक्त पहाड़ी क्षेत्र में जगह–जगह भीलों की बस्तियाँ थीं। नाहेसर का भील नायक, जिसे रावत कहकर सम्बोधित किया जाता था, राणाप्रताप का पक्का भक्त सेवक था। प्रताप के संघर्षमय जीवन में भीलों का अत्यधिक महत्व रहा।[80] स्पष्ट है कि राजस्थान के भौगोलिक परिवेश ने स्थानीय इतिवृत्त को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया है।

राजस्थान की प्राकृतिक स्थिति ने, जिसमें पर्वतमाला, पठार, नदियाँ, मैदान तथा मरूस्थल की विभिन्नता सम्मिलित है, यहाँ के सांस्कृतिक इतिहास के निर्माण

में अभूतपूर्व भूमिका निभाई है। इसी के अंचल में प्रागैतिहासिक काल से अकबल काल तक पनपने वाली युग–युगान्तर की संस्कृति की परतें स्थापित हुई। इन विभिन्न युगीन संस्कृति के निरूपण के सम्बन्ध में भौगोलिक ढाँचे के निर्माण का परिचय अपेक्षित है जो इसकी आधारशिला है।[81]

तदनन्तर जीवन सम्भव कल्प एवं 'जीव कल्प' आते हैं जो आज से 16 से 30 करोड़ वर्ष पूर्व के हैं। कल्पों के इस जीवाश्म संघ के असंख्य नमूने जैसलमेर के निकट कई स्थानों से उपलब्ध हुए हैं। कडियाल, काला डूँगर, चैनपुरा आदि से पेड़–पौधों एवं जीव–जन्तुओं के जीवाश्म मिलते हैं। आज भी आकल में तो आठ बड़े–बड़े पेड़ जीवाश्मों के रूप में सुरक्षित देखे जा सकते हैं।[82]

वैसे तो राजस्थान के अनार्यों और आर्यों की सभ्यता और संस्कृति का भेदकाल, स्थान एवं मान्यता के विचार से स्पष्ट था। अनार्य जन, जो यहाँ के स्थानीय निवासी थे और आर्यों के आने के पहले से बसे हुए थे, हजारों वर्षों के जीवन–यापन के स्थानीय क्रम को अपनाये हुए थे।[83]

संस्कृति की दृष्टि से राजस्थान भारत के उन समृद्ध प्रदेशों में है, जो विश्व–समाज को कुछ दे सकते हैं। जो देय सामग्री है वह सभ्यता की अविच्छिन्नता तथा ओजस्विता है। चाहे यहाँ का साहित्य हो या कला, वे ऐसे अनमोल रत्न हैं कि इनका मूल्यांकन सहज ही होना सम्भव नहीं। इनका स्वरूप चिन्तन और मनन से निर्धारित होता है। यही वे तत्व हैं जिन्होंने यहाँ के मानव में उदारता, दृढ़ता और शौर्य का संचार किया। प्राचीनकाल में जितनी भी विदेशी नस्लें यहाँ बसीं, उन्हें आत्मसात करने में यहाँ की धरती ने कोई कसर न रखी। साथ ही, मध्यकालीन आक्रामकों की विशेषता को सामंजस्य की भावना से इस प्रकार प्रभावित किया कि यहाँ एक समन्वयपरक संस्कृति का उदय हुआ।

जब राजपूत जाति के कतिपय वीरों ने इस राज्य के विविध भागों पर मध्ययुगीन काल में अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया तो इस समूचे भाग को अपने–अपने वंश या स्थान विशेष के अनुरूप नामों से प्रसिद्धि मिली और उन्हें विविध राज्यों की संज्ञा दी गई। ये राज्य उदयपुर, डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़,

जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, सिरोही, कोटा बूँदी, जयपुर, अलवर, भरतपुर, करौली, झालावाड़ और टोंक थे।[84]

इन राज्यों के नामों के साथ–साथ इनके कुछ भू–भागों को स्थानीय एवं भौगोलिक विशेषताओं के परिचायक नामों से भी पुकारा जाता है। ढूँढ़ नदी के निकटवर्ती भू–भाग को ढूँढाड़ (जयपुर) कहते हैं। मेव तथा मेद जातियों के नाम से अलवर को मेवात तथा उदयपुर को मेवाड़ कहा जाता है। मरूभाग के अन्तर्गत रेगिस्तानी भाग को मारवाड़ भी कहते हैं। डूँगरपुर तथा उदयपुर के दक्षिण भाग में प्राचीन 56 गाँवों के समूह को 'छप्पन' नाम से जानते हैं। माही नदी के तटीय भूभाग को कोथल तथा अजमेर के पास वाले कुछ पठारी भाग को ऊपरमाल की संज्ञा दी गई है।[85]

राजस्थान का सबसे प्रसिद्ध पशु ऊँट है जो सवारी तथा माल ढोने के काम में आता है। पालतू पशुओं में गाय, बैल, भैंस, बकरी, घोड़ा, गधा आदि हैं। बाघ, चीता, रींछ, सूअर, भेड़िया, जरख, चीतल, हिरन, नीलगाय, खरगोश, लोमड़ी आदि जंगली जानवर यहाँ पाये जाते हैं। इनकी रक्षा के लिए रणथम्भौर तथा सिरस्का में अभयारण्य बनाये गये हैं। पक्षियों के लिए भी भरतपुर के पास घना झील में इनके परिपालन की व्यवस्था है।[86]

सन्दर्भ :

1 पतंजलिकृत महाभाष्य, 3.2.111; द ऐज ऑफ इम्पिरियल यूनिटी, पृ. 96.
2 कर्नल टॉड, ऐनाल्स एण्ड एंटिक्यूटिज ऑफ राजस्थान, भाग–1, पृ. 196.
3 वीर विनोद, पृ. 248.
4 कनिंघम, आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट, खण्ड–4, पृ. 95–96; वैब, द करैन्सीज ऑफ हिन्दू स्टेट्स ऑफ राजपूताना, पृ. 6.
5 वीर विनोद, भाग–1, पृ. 250.
6 आर.पी. व्यास, महाराणा प्रताप, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010, पृ. 34.
7 आर.पी. व्यास, महाराणा राजसिंह, पृ. 8–9; रामवल्लभ सोमानी, हिस्ट्री ऑफ मेवाड़, पृ. 53, 56, 80, 86.
8 वीर विनोद, पृ. 248–50.
9 दशरथ शर्मा, लेक्चर्स ऑन द राजपूत हिस्ट्री एण्ड कल्चर, पृ. 46.
10 गौरीशंकर हीरानन्द ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ. 250.
11 गौरीशंकर हीरानन्द ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ. 259–270.
12 कर्नल टॉड, ऐनाल्स एण्ड एंटिक्यूटिज ऑफ राजस्थान, भाग–1, पृ. 224.
13 गौरीशंकर हीरानन्द ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ. 271–72.
14 आर.पी. व्यास, महाराणा प्रताप, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010, पृ. 38.
15 गौरीशंकर हीरानन्द ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ. 277–278.
16 आर.पी. व्यास, महाराणा राजसिंह, पृ. 11.
17 एन्युअल रिपोर्ट ऑफ द आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, 1907–08, पृ. 214–215.
18 वीर विनोद, भाग–1, पृ. 321–322.
19 गौरीशंकर हीरानन्द ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ. 291–293.
20 गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास, पृ. 230–234.
21 गौरीशंकर हीरानन्द ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ. 637–638.
22 गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास, पृ. 258–259.
23 मुंशी देवीप्रसाद, महाराणा संग्रामसिंह का जीवन–चरित, पृ. 26–27.
24 ब्रिग्स फरिश्ता, जिल्द–4, पृ. 83; वीर विनोद, भाग–1, पृ. 354–55.
25 गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास, पृ. 263–64.
26 बाबरनामा, पृ. 612–13; गौरीशंकर हीरानन्द ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ. 353–356.
27 बाबरनामा, भाग–2, पृ. 561; गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास, पृ. 265.

28 बाबरनामा, भाग–2, पृ. 529; गोपीनाथ शर्मा, मेवाड़ एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ. 20–26.
29 बाबरनामा, भाग–2, पृ. 568–74; गोपीनाथ शर्मा, मेवाड़ एण्ड द मुगल एम्परर्स, पृ. 36–40.
30 रघुवीरसिंह, पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ. 21.
31 तुजुक–ए–बाबरी का अंग्रेजी अनुवाद, पृ. 483; ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ. 698.
32 वीर विनोद, पृ. 27–55.
33 वीर विनोद, पृ. 63–70; गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास, पृ. 275.
34 अब्बास, तारीख–ए–शेरशाही, पृ. 69–70; कानूनगो शेरशाह, पृ. 329.
35 गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास, पृ. 276–77.
36 गौरीशंकर हीरानन्द ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ. 724–25; उद्धृत – प्रकाश व्यास, आधुनिक मेवाड़ का इतिहास, पृ. 17.
37 अकबरनामा, भाग –2, पृ. 160–62; तबकाते–अकबरी, भाग–2, पृ. 156; फरिश्ता, भाग–1, पृ. 251.
38 रघुवीरसिंह, महाराणा प्रताप, जीवनी, महत्व व देन, पृ. 19.
39 रघुवीरसिंह, महाराणा प्रताप, जीवनी, महत्व व देन, पृ. 20.
40 राजेन्द्र भट्ट, मेवाड़ के महाराणा, पृ. 143.
41 रघुवीरसिंह, महाराणा प्रताप, जीवनी, महत्व व देन, पृ. 20–21.
42 अलबदायूँनी, भाग–2, पृ. 42.
43 रघुवीरसिंह, महाराणा प्रताप, जीवनी, महत्व व देन, पृ. 25.
44 दलपत विलास, पृ. 102–108.
45 आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, अकबर महान, पृ. 138.
46 आर.पी. व्यास, महाराणा प्रताप, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010, पृ. 89–90.
47 आर.पी. व्यास, महाराणा प्रताप, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ. 89–90.
48 पालीवाल, महाराणा प्रताप महान, पृ. 9–10; आशीर्वादीलाल, अकबर महान् (हिन्दी अनुवाद), भाग–2, 1972, पृ. 345–46.
49 पालीवाल, महाराणा प्रताप स्मृति ग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ. 11.
50 अकबरनामा (बैवरिज), भाग–2, पृ. 475–77; गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास, पृ. 281.
51 कर्नल जेम्स टॉड, राजस्थान का इतिहास, साहित्यागार, जयपुर, 2012, पृ. 17.
52 कर्नल जेम्स टॉड, राजस्थान का इतिहास, साहित्यागार, पृ. 17.
53 कर्नल जेम्स टॉड, राजस्थान का इतिहास, साहित्यागार, पृ. 19.
54 कर्नल जेम्स टॉड, राजस्थान का इतिहास, साहित्यागार, पृ. 19.
55 कर्नल जेम्स टॉड, राजस्थान का इतिहास, साहित्यागार, पृ. 20.
56 कर्नल जेम्स टॉड, राजस्थान का इतिहास, साहित्यागार, पृ. 20.

57 इम्पीरियल गजेटियर, प्रो.सी., पृ. 1.
58 इम्पीरियल गजेटियर, प्रो.सी., पृ. 93, 207, 234, 248 253, 458.
59 गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 8.
60 वीर विनोद, पृ. 105.
61 आर.पी. व्यास, महाराणा प्रताप, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010, पृ. 25–26.
62 वीर विनोद, पृ. 107.
63 आर.पी. व्यास, महाराणा प्रताप, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010, पृ. 27.
64 वीर विनोद, पृ. 103–105.
65 वीर विनोद, पृ. 109–110.
66 ब्रिग्स, फरिश्ता, भाग–4, पृ. 208–10, 221–222.
67 आर.पी. व्यास, महाराणा प्रताप, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010, पृ. 25.
68 वीर विनोद, पृ. 100.
69 इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, राजपूताना, पृ. 107.
70 आर.पी. व्यास, महाराणा प्रताप, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010, पृ. 27.
71 राजेन्द्र शंकर भट्ट, महाराणा प्रताप, पृ. 18–19.
72 आर.पी. व्यास, महाराणा प्रताप, प्राक्कथन.
73 तुजुक, पृ. 134 बी.; भाग – 1, पृ. 273.
74 गोपीनाथ शर्मा, मेवाड़ मुगल सम्बन्ध, 1976, पृ. 7.
75 मुन्तखब, भाग–2, पृ. 239.
76 खुलासत–उत–तवारीख, (पाण्डुलिपि), पृ. 5–6.
77 तारीख–ए–सलातीन–ए चकताई (पाण्डुलिपि), पृ. 317.
78 गोपीनाथ शर्मा, मेवाड़ मुगल सम्बन्ध, 1976, पृ. 7.
79 आर.पी. व्यास, महाराणा प्रताप, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010, पृ. 30.
80 हुक्मसिंह का प्रकाशित लेख, मेवाड़ की भौगोलिक–आर्थिक स्थिति और प्रताप, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, भूपाल नोबल संस्थान, उदयपुर, पृ. 67–78.
81 गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 15.
82 डी.के. व्यास, जैसलमेर–जीवाश्म का अतुलनीय भण्डार, राजस्थान पत्रिका, अगस्त, 1982, पृ. 4.
83 गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 33.
84 इम्पीरियल गजेटियर, प्रो.सी., पृ. 1.
85 गोपीनाथ शर्मा, सोशल लाइफ इन मेडिवल राजस्थान, पृ. 3.
86 गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 7.